स्वर्गवासी श्रीयुत पण्डित विष्णु कृष्णशास्त्री
चिपलूणकरलिखित

संस्कृत

कविपंच ।

(१) कालिदास (२) भवभूति (३) बाणभट्ट
(४) सुबन्धु (५) दंडी

कालिदास ।

नागपुरनिवासी पण्डितगङ्गाप्रसाद अ-
ग्निहोत्रीद्वारा अनुवादित

प्रथमवार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ानेमें प्रकाशित

सन् १८९९ ईसवी ॥

भवभूति ॥

उक्तग्रन्थमें की यथार्थजीवनी तथा तद्विषयक लौकिक दन्तकथाओंका उल्लेख सविस्तरकर वह कालिदासका समकालीन था वा नहीं सो वास्तव स्पष्ट निश्चित करनेके अन्तर उसके मालती माधवादि तीनों नाटककी परमोत्तम आलोचना लिखी गयी है। इसके अनन्तर उसके सर्व्वप्रसिद्ध कवित्वगुण, पदलालित्य, करुणारस, प्रकृति देवीके मनोहर वर्णन, मानसिक वृत्तियोंके सोदाहरण वर्णन आदि नितांत गम्भीर एवं प्रसाद गुणसम्पन्न भाषामें लिखे गये हैं। यह पुस्तक बहुत जल्द छपकर तय्यार होगी ॥

इसीप्रकारके ज्येष्ठ श्रेष्ठ तीनकवियोंका जीवनचरित्र निम्नलिखित पुस्तकोंमें सविस्तर वर्णित है वह भी उक्त महाशय पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्रीद्वारा तैयार हो रही हैं आशा है कि यह भी शीघ्र प्रकाशित कीजावेंगी ॥

१ बाणभट्ट २ सुबन्धु ३ दण्डी

संस्कृतकविपञ्च ।
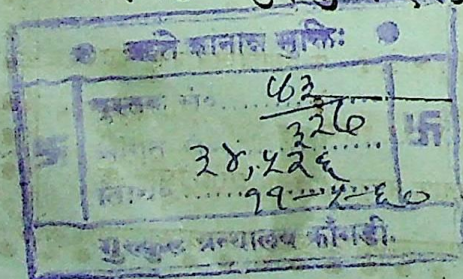
कालिदास ।

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्म्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विवजायते ॥ * हर्षचरित ।

कालिदासके विषयमें यही कहाजाता है कि प्रायःहोमरकी नाईं उसके विषयमें अभीलों निश्चयरूपसे कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं हुआ है। उसकी असामान्य कीर्त्ति आज अनुमान हज़ार डेढ़ हज़ार वर्षसे अद्वितीयताके कारण उसके स्वदेशमें अमेटरूपसे फैली हुई है, और उसका नाम आबालवृद्धके जिह्वाग्रपर पाया जाता है, पर वह कौन था, कहां था,कब था आदिके विषयमें किसीको कुछभी ज्ञात नहीं है। उक्त तीनों बातोंका अनुसन्धान करनेकेलिये अंगरेज़ और भारतवर्षीय विद्वान् लोगोंने बहुत उद्योग किया है; पर अद्यावधि किसीकेभी उद्योगको सफलता प्राप्त नहीं हुई है। उसकी जाति, स्थल, और जीवन काल आदि अभीलों अनिश्चित हैं। कोई कहते हैं वह सारस्वत ब्राह्मण था। कोई कहते हैं वह काश्मीरका रहनेवाला था, कोई कहते हैं नहीं वह उज्जैनमें रहता था वैसेही और लोग कहते हैं वह धारानगरीका निवासी था। ऐसीही मतभिन्नता उसके जीवनकालके विषयमेंभी पायी जाती है। किसीका मत है कि वह ईसवी सन् के पूर्व पहिली शताब्दीमें जन्मा था, कोई कहते हैं नहीं उसके अनन्तर छठीं शताब्दीमें वह हुआ है। इस प्रकारसे कालिदासके विषयमें निश्चयरूपसे किसी बातका पता नहीं लगता। कई लोगोंकी सम्मति है

---

* कालिदासकी उत्तम उक्तिकी चर्चा छिड़नेपर ऐसा कौन है जिसे वह आनन्द नहीं होता जो मधुर एवं रसचुहचुहाती हुई नूतन मञ्जरीको देख कर होता है।

कि कालिदास दो हुए हैं । कई लोगोंका अनुमान है कि जिस रस-सिद्ध महाकविने शकुन्तलादि ग्रन्थ लिपिबद्ध किये हैं वह उज्जैनका निवासी था; और 'नलोदयादि' सामान्य एवं क्लिष्ट काव्योंका रचयिता, भोजराजाका आश्रित कोई दूसरा कालिदास हुआ है । तात्पर्य ग्रीसदेशके आदि कविकी नाईं हमारे महाकविके विषयमें अबलों एकसी खींचाखींच चली जाती है पर उससे मथितार्थ अभीलों कुछभी सम्पादित नहीं हुआ । दयामूर्त्ति परमेश्वरसे हमारी सानुरोध यही प्रार्थना है कि उक्त खींचातानीका परिणाम जैसे होमरका अनुसन्धान करते करते अन्तमें यह निश्चित होगया ❀ कि उस नामका कोई मनुष्यही नहीं था; वही आक्षेप बिचारे हमारे कबिके अस्तित्व पर न आने पावे ।

कालिदासके विषयमें हमें कुछभी वृत्तान्त उपलब्ध न होनेका बड़ाभारी कारण तो यह है कि उसने निज के विषयमें आत्मरचित ग्रन्थों में कुछ भी नहीं लिखा । भवभूति, वाणप्रभृति कवियोंने जिस प्रकारसे अपने वंशका वर्णन अपने ग्रन्थोंके आदिमें किया है, और प्रायः सब कवियोंकी अपने पाठकों तथा भावी लोगोंको आत्मपरिचय देनेकी जो प्रथा पायी जाती है, उसकी कालिदासने नितान्त उपेक्षा की है । अपने ग्रन्थों पर उसने अपना नामलों तो लिखाही नहीं तो फिर अपर परिचयकी बात तो बहुत दूरकी है । उसकी कीर्त्ति पहिलेसेही दिगन्तरव्यापिनी होकर, उसके ग्रन्थ समस्त लोगोंको परम प्रिय एवं मान्य यदि न हो जाते, और यदि वह नाटक प्रणीत न करता, तौ आज दिन उसके नामका लुप्त होजाना कोई असंभव बात न थी । उक्त दोनों का-

---

❀ जर्मनीमें उल्फ नामका कोई पण्डित था । उसने यह सम्मति प्रकट की है कि, होमर नामका कोई मनुष्यही नहीं था । 'इलियड' और 'ऑडिसी' काव्यको अनेक कवियोंने मिलकर लिखा है, और वे उक्त नामसे आजलों चलेआते हैं यही समझना चाहिये । पर अब इधर उक्त मतकी प्रबलता हीन होगयी है ।

रणोंके योगसे उसकी रक्षा तो हुई है, पर तिसपर भी उसके मौनभाव ने एक बड़ीभारी आपत्ति उत्पन्न करही दी। वह यह है कि बहुतसे सामान्य और कई अप्रयोजनीय ग्रन्थ भी उसके नामसे आजलों प्रसिद्ध होते चले आये हैं, और भूतपूर्व्व पण्डित लोगोंमें अनुसंधानशीलताका पूर्णरूपसे अभाव होनेके कारण वे सब उसके बड़े नामपर प्रसिद्ध होते चले आये। * अमुक २ काव्य ग्रन्थपर कालिदासका नाम अवश्य पाया जाता है; पर उसमें उसका कवित्व गुण कहांलोंदृष्टि गत होताहै, इस वातका विचार करना तक पुराकालमें किसीके मनमें नहीं आता था। अतः कालिदासके नामसे आजलों प्रसिद्ध होते आये हुए ग्रन्थोंमेंसे वर्त्तमान पण्डितोंने कई ग्रन्थोंको पृथक् कर उन्हें झूठ ठहराया है। इसके उदाहरण स्वरूपमें 'मालविकाग्निमित्र' नाटक और 'नलोदय' काव्यका नामोल्लेख किया जाता है। उक्त नाटक कालिदासकृत नहीं है, वा निदान सच्चे कालिदासका नहीं है, यह सम्मति विलसन् साहबने एक स्थान पर प्रकाशित की है; तबसे उसके विषय में

---

* विना नाम ग्रन्थके प्रकाशित होनेसे दो प्रकारके अनर्थ होते हैं। एक तो निम्नश्रेणीके ग्रन्थोंको प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ताओंके नामसे प्रसिद्ध करनेका अवसर लोगोंके हाथ लग जाता है, दूसरे और लोगोंको भी प्रसिद्ध ग्रन्थोंके साथ अपना नाम चपका देनेका अवसर मिलजाता है। इस दूसरे अनर्थ से अपनी कविताकी रक्षाकरनेकेहेतु पण्डितराज जगन्नाथने अपने 'भामिनीविलास, के अन्तमें निम्न लिखित श्लोक लिख दिया है।

दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यंतीति शंकया।
मदीयपद्यरत्नानां मंजूषैषा मया कृता॥

'दुष्ट एवं जारजात लोग मेरे पद्यरत्नोंको अपहृत करलेंगे इस शंकाके कारण यह मंजूषा मैंने प्रस्तुत की है। पण्डित राजके समस्त रत्न एक सूत्रमें गुंफित न होने के कारण उक्त भयकी विशेष संभावना थी।,

सबके मनमें सन्देह उत्पन्न होगया है। * और यह बात प्रतीत भी होतीहै, क्योंकि उक्त नाटकको पढ़तीबार रसज्ञजनोंको इस बातका तनिक भी बोध नहीं होने पाता कि हम 'शाकुंतल' और 'विक्रमोर्वशी' रचयिता कविकी कविता पढ़ रहे हैं। 'नलोदय'काव्यकी बात उक्त कथन से भी निराली है। जिसमें अणुमात्र भी रसिकता होगी, और जिसे कालिदासके कवित्व गुणकी यत्किंचित भी पहिचान होगी, उसे उक्त क्लिष्ट काव्यकी कर्तृताके विषयमें बिलकुल शङ्का न होगी। कहां तो संस्कृत कवियोंके कुलगुरुकी प्रसन्नता और सरसतासंपन्न वाणी और कहां नारिकेल पाक तुल्य उक्त हठ कवित्व! आज पर्यंत समस्त धरती पर जो प्रसिद्ध २ कवि हुए हैं उनमेंसे उक्त कैसे इन्द्रजालको प्रदर्शित करनेमें अपनेको किसीने भी धन्य नहीं माना वरन उसके विषयमें सबने तिरस्कार प्रदर्शित किया है। बड़े कष्टसे शब्द चमत्कृतिका साधन कर अरसिक लोगोंसे प्रशंसा प्राप्त करनेका उत्साह केवल निम्न श्रेणीके कवियोंमें दृष्टिगोचर होता है। यह बात आगे अपर कवियोंके वर्णनमें प्रदर्शित की जायगी। कालिदासादिकोंके श्रोतृचित्तरंजन करनेके साधन कुछ निरालेही रहते हैं। गोवर्धनाचार्य्यने कहा है।

साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीला कालिदासोक्तिः॥

"शिक्षाके समयमें भी आनन्द देनेवाले केवल दोही विषय हैं, एक स्त्री समागम, और दूसरा कालिदासकी कविता। पहिला कामि-

---

* विलसन् साहबने उक्त प्रतिकूल सम्मति अपने 'हिन्दू थियेटर' संज्ञक ग्रन्थ में प्रकाशित की है। इस ग्रन्थमें संस्कृत परमोत्कृष्ट नाटकोंका अङ्गरेज़ीमें पूरा उल्था और शेषका योंही थोड़ा बहुत स्वरूप कथन किया गया है।

नियोंके मधुर, कोमल, और भावयुक्त मंद आलापोंसे परिपूर्ण है; और दूसरी कविता उक्त मुग्ध भाषणोंकी नाईं मनोहर है। *

सारांश आजलों कालिदासके नामसे प्रसिद्ध होते चले आये हुए ग्रन्थोंमेंसे कई ग्रन्थोंके विषयमें संशयात्मकता पायी जाती है; इसका कारण ऊपर कही चुके हैं। अब जो ग्रन्थ यथार्थमें उसके हैं और अन्तःरङ्ग रचना तथा जन प्रसिद्धिद्वारा उसीके निश्चित होते हैं, उनके विषय में नीचे यथाक्रम विवेचना की जाती है।

कालिदासका प्रथम ग्रन्थ 'ऋतुसंहार' है। † इसमें षड्ऋतुका वर्णन किया गया है। भिन्न २ ऋतुमें प्रकृति देवी जिन जिन रूपोंको धारण करती है उनका इसमें संस्कृतकविकुल प्रथानुसार कविने वर्णन किया है। इस काव्यका विशेष गुण मधुर एवं कोमल पदरचना और कविजन संप्रदायानुसार सरस अर्थका निबन्धनमात्र है। इस ग्रन्थको देख यही बात विचारमें आती है कि हमारे कविने प्रकृति देवीका अनुधावनकर इस सरलसे विषयको पहिलेसे हाथमें लिया होगा; और जिस वाग्देवीके सर्वस्व एवं पूर्ण कृपाका आगे वह पात्र बना, उसे उक्त छोटेसे काव्यद्वारा उसने प्रथम नमन किया होगा। अब इधर अंगरेज़ी

---

* केवल शब्द चमत्कृतिसम्पन्न काव्यद्वारा यथार्थ रसिककी मनस्तुष्टि बिलकुल नहीं होती। यह अभिप्राय 'आर्यासप्तशती में' बड़े सरस एवं मार्मिक दृष्टांतद्वारा व्यक्त किया गया है।

रतरीतिवीतवसना प्रियेव शुद्धाऽपि वाङ्मुदे सरसा।
अलसासालंकृतिरपि न रोचते शालभंजीव॥

वैसेही,

अध्वनि पदग्रहपरं मदयति हृदयं न वा न वा श्रवणम्।
काव्यमभिज्ञसभायां मंजीरं केलिवेलायाम्॥

† यह बात तो स्पष्टही है कि कालिदासके ग्रंथोंकी तालिका कालक्रमानुसार न बन सकेगी एतावता वर्त्तमान लेखमें वह क्रम ग्रंथोंकी उत्कृष्टतापर निर्भर किया गया है।

कविताके पठनपाठनद्वारा जिन लोगोंको प्रकृतिवर्णनके नूतन प्रकारों का परिचय हुआ होगा उन्हें उक्त ग्रन्थका वर्णन बहुत पसन्द न होगा। क्योंकि वे लोग कहते हैं कि उक्त ग्रन्थ विचित्रताविशेष और सृष्टिके पूर्ण एवं सूक्ष्म अवलोकनके अभावसे दूषित है। और सच पूछिये तो उक्त दोषको दूर करनेकेलिये कोई उपाय भी नहीं है। वर्त्तमान काव्यके पक्षमें इतना अवश्य कहा जासकता है कि उक्त दोष केवल उक्त काव्यमें ही नहीं घटित होता किन्तु संस्कृत कवितामें सृष्टि वर्णन प्रणाली सामान्यत: चारों ओर उसी प्रकारकी पायी जाती है। इसी कविके 'रघुवंश में' 'वसन्त' और ग्रीष्मऋतुका वर्णन है, 'कुमारसम्भवमें' पुन: केवल 'वसन्तका' वर्णन है, और वैसेही 'मृच्छकटिक' नाटकमें पावसका 'कादम्बरी में' वसन्त और वर्षा का, 'किरातार्जुनीयमें' शरदृतुका' और शृंगारशतकमें' पांचों ऋतुका वर्णन है, सारांश उक्त भिन्न २ स्थलोंमें संस्कृत कवियोंके ऋतु वर्णन पाये जाते हैं। पर एक छोरसे लगा दूसरे छोरतक एकही प्रकार दृष्टिगत होताहै। वसन्तके वर्णनमें कोयलका कलरव, और आंवोंका बौरना, ग्रीष्मके वर्णन में चंद्रिका और शीतलताका उपचार, पावसके वर्णनमें मोर चातक का आनन्द प्रदर्शन, शरद्वर्णनमें हंस और स्वच्छ चन्द्रिका-का वर्णन और हेमंत शिशिरमें शीतवायुके झकोरोंका वर्णन, इत्यादि प्रसिद्ध प्रसिद्ध बातोंके अतिरिक्त कहीं कुछ अधिक वर्णन नहीं पाया जाता। अंगरेज़ी कवितामें जिस प्रकार गगनभेदी पर्वतों के और उनके तुङ्ग शिखरोंसे दृष्टिगत होनेवाले भव्य एवं रमणीक दृष्योंके, और तूफानसे उभड़ेहुए समुद्र आदिके वर्णन पाये जाते हैं, वैसे संस्कृत में प्राय: नहीं दीखपड़ते। और तो क्या पर समुद्र परके मेघकेलिये संस्कृतमें कोई शब्द है वा नहीं इसकी शंकाही बनी रहती है। 'वात्या' 'वात्या चक्र' प्रभृति शब्द हैं पर वे धरती परके मेहोंकेही वाचक हैं। अंगरेज़ी और संस्कृत कविताकी यदि तुलना की-

जाय, तो दोनोंमें ऐसे विशेष भेद बहुत पाये जायँगे; पर उन सबमें यह प्रधान होनेके कारण भाषाशास्त्रविशारदोंद्वारा विचारार्ह हैं। सृष्टिके चमत्कार और रमणीक दृश्योंको देख एक सामान्य विचारशील मनुष्यका मनभी तल्लीन हो आश्चर्य्यचकित होजाता है; तो फिर 'मेघालोके भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्तिचेत:' ऐसा जिन्हें अनुभव हो-चुका है उन कविश्रेष्ठोंके मन उन्हें देख कैसे तल्लीन होने चाहिये। पर वह बात उनके वर्णनोंमें विशेषरूपसे दृष्टिपथगामिनी नहीं होती। अब इसमें अणुमात्रभी संदेह नहीं है कि सूक्ष्म विचार करनेपर इनके कारण अनेक ज्ञात होंगे, पर संप्रति यहां उन्हीं प्रधान २ कारणों का उल्लेख किया जाता है जो सर्वसाधारणको सहसा विदित होसकते हैं। कालिदास, बाणप्रभृति कवियोंने राजधानीमें होनेवाले महोत्सवोंका और राजागणोंके अन्त:पुरआदिका जो स्थान स्थानपर वर्णन किया है उससे यह बात स्पष्टरूपसे प्रतीत होती है कि वे लोग राजाश्रित थे। राजाश्रित होनेके कारण वनश्रीकी असामान्यशोभाके निरीक्षणार्थ य-थेच्छ भ्रमणकरनेकी आधीनता उन्हें अप्राप्त थी। अरण्य सृष्टिके चम-त्कार देखनेका अवसर उनके हाथ तभी लगता जब कभी राजालोग मृगया खेलनेकोजाते और उन्हें अपने साथ लेजाते; ऐसे प्रसंगोंका व-र्णन उनकी कवितासृष्टिमें अनेक स्थलोंपर उपलब्ध होता है। ऋतुसं-हारादि काव्योंमें जो वर्णन पाये जाते हैं वे ऐसे हैं जो नगरके नगर वा उपवनमें दृष्टिगत होसकते हैं। इसके सिवाय हमलोगोंमें और विशेषत: ब्राह्मणोंमें नित्य नैमित्य कर्मोंकी जो अधिकता रहती है वहभी उक्त विषयोंमें हमारे कवियोंको बाधक हुई होगी; इन सब कारणोंसे यही लक्षित होता है कि प्रकृतिदेवीके भिन्न भिन्न प्रेक्षणीय दृश्योंके अव-लोकन तथा वर्णन करनेका इन्हें तादृश उत्साह न हो केवल मानवी स्वभाव, और प्रथक् प्रथक् मनोव्यापारोंकी ओर उनके विचारकलाप विशेषरूपसेआकृष्ट हुए। साहित्य अर्थात् अलंकार शास्त्रका इसदेश में

जो इतना उत्कर्षहुआ है उसका प्रधान कारण यही प्रतीत होता है वर्णनीय विषय थोड़े एवं नियमित होनेके कारण भावी कवियोंको उन्हीं विषयोंका अनेक प्रकारसे वर्णन करना पड़ता है; क्योंकि उनके सिवाय उपायांतरही नहीं रहता । वाल्मीकि, व्यासादि आदि कवियोंके ग्रन्थोंमें जो विचार नितांत सरल रीतिसे व्यक्त किये हुए पाये जाते हैं उन्हींको भावी कविगण अलंकारोंकी सजावटसे सजाते हैं। मुख चंद्रकी नांई समुज्जल है, केवल इतनेही अर्थको भविष्यत कवि लोग अपनी २ बुद्धिके अनुसार, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास और श्लेषादि नानाप्रकारके अलंकारोंकी शरणले प्रकाशित करते हैं । इस प्रकारसे इस शास्त्रकी उन्नति होते २ उसके योगसे संस्कृत भाषाको ऐसी विचित्रता प्राप्त होगयी है कि, वैसी अंगरेजी वा अपर किसी भाषामें प्राय न पायी जायगी । तीसरा कारण यह देख पड़ता है कि पदार्थ-विषयक शास्त्र अर्थात् ज्योतिष, रसायन, दर्शनानुशासनादिकोंका वर्त्तमान शताब्दीमें विलक्षण फैलाव हो सृष्टिके अनेक गूढ़ व्यापार प्रकट होतेजाते हैं; और विधाताने अपार चतुराईसे जो उसकी रचना की है सो दिन दिन अधिकतर व्यक्त होती जाती है । इसके योगसे क्षुद्रातिक्षुद्र कीटकसे ले अंतरालयांतर्गत गोलोंपर्यंत संपूर्ण विश्व चमत्कारमय भासितहै उसके अपूर्व दृश्योंद्वारा भूतपूर्व कवियोंको जो आनंद होता था वह अशतगुणित बढ़गया है । यही कारण है कि वर्त्तमान शताब्दीके आदिमें जो अंगरेज कवि हुए हैं उनके लिखेहुए सृष्टिके वर्णन परमोत्कृष्ट हुए हैं । वर्ड्स्वर्थ नामक कविको सृष्टिविभवदर्शनकी ऐसी उत्कट इच्छा और उत्साह था कि उसका पूराजन्म पहाड़ी देश, नदी मैदानादि पर भ्रमण करनेमें बीता । अस्तु; इन सब बातोंमेंसे हमारे कवियोंको कहीं कुछभी अनुकूल न था, अतः यह ऊनता उनके काव्योंमें दीख पड़ती हैं ऐसा कहना युक्ति संगत प्रतीत होता है ।

'कुमारसम्भव' महाकाव्यको जान पड़ता है कालिदासने मध्य

अवस्थामें लिखा होगा। इसकी कथा शैवपुराणसे ली गयी है। आदिमें पार्वतीके पिता हिमालयका वर्णनकर, पहिलेसर्गमें उनका जन्म और उसकी मुग्धावस्था वर्णित की है। दूसरेमें त्रिजगत्पीडकतारकासुरत्रसित इन्द्रादिसुर ब्रह्माको शरणागत हुए हैं; और ब्रह्माने मदनको वस करनेकी युक्ति इन्द्रको बतलाई है। तीसरेमें मदनने इन्द्रकी सूचनानुसार शिवप्रेरणाका काम अङ्गीकृत कर अपने सहायक वसन्तको प्रगटित होनेकी आज्ञा दी है। अनन्तर पार्वती शिवदर्शनार्थ आयी हैं और कामने तदर्थ शिवके हृदयमें क्षणभर कामबुद्धि उत्पन्न की है; पर शीघ्रही शिवने उसका दमनकर चारों ओर क्रोधाग्निकी दृष्टि फैलायी। उसके मदनपर पड़तेही वह भस्म होगया। चौथेमें मदनप्रिया रतिके पतिवियोगजन्य शोकका वर्णन है। शोक संतप्तहो उसने वसंतको चिता प्रस्तुत करनेकी प्रार्थना की; पर इतनेमें आकाशवाणी द्वारा उसे पुनः पतिप्राप्तिका आश्वासन मिलनेके कारण वह निश्चय उसने छोड़ दिया। पांचवेंमें पार्वतीका तप वर्णित है। शिवके सहसा अन्तर्हित होजाने पर पार्वतीका जो अपमान हुआ उससे नितांत दुखी हो पार्वतीने हिमालयपर उग्र तप करनेका निश्चय किया। फिर बहुत काल बीतने पर एक मुनि उसके आश्रमपर आये। उनका उसने स्वागत किया तदनन्तर मुनिने उनके घोर तप का कारण पूछा। सखीद्वारा उक्त मुनिको सब वृत्तान्त सुनाया जिसे सुन मुनिने अत्यन्त विस्मितसे हो अमंगलरूप शिवपर इस प्रकार आसक्त होना बहुत अयोग्य है कहकर शिवकी निंदा करना प्रारंभ किया। शिवनिंदा पतिप्राणा पार्वतीके कर्णकुहरमें प्रविष्ट होतेही उसकी देह क्रोधाग्निसे संतप्त होगयी, शिवकी अगाधि महिमा तुझ्झ कैसे नराधमको क्योंकर ज्ञात हो सकती है, इत्यादि कह पार्वतीने उसकी निर्भर्त्सना की; फिर वह वही बात पुनः बोलनेहीको था कि उसे वहांसे निकालदेनेके लिये पार्वतीने अपनी सखीको आज्ञा दी और स्वयं उसने वहांसे चलदिया। इतनेमें उक्त

मुनिने अपना सच्चा शिवरूप प्रगटितकर पार्वतीके संदेहका निवारण
किया, और आजसे मैं तेरा दास हुआ ऐसा कह उन्हें उनके तप
सफलता ज्ञात करायी। छठेमें शिवके स्मरण करतेही सप्तर्षि प्रगट
और शिवकी आज्ञानुसार उनलोगोंने हिमालयके निकट जा पार्वती
विवाहके विषयमें बातचीतकर बिवाह निश्चित किया। अंतिम अर्थात्
सातवें सर्गमें उमा महेश्वरके विवाहका आनंदोत्सव वर्णित है। का-
लिदासके नाम तथा उसके बहुतेरे ग्रंथोंको देख जाना जाता है कि शिव
पार्वती उसके उपास्यदेव थे। तीनों नाटकोंकी नांदीमें शिवनमस्कृति
पायी जाती है; 'रघुवंश,के आदि और कहीं २ बीचमें भी शिवस्तुति
श्लोक पाये जाते हैं; पर यह बात 'मेघदूतमें' बहुत अधिकताके सा
पायी जाती है। 'कुमारसंभव'में शिव पार्वतीके उद्वाहपर्य्यंतकी स
मस्त बातोंका वर्णन है; और 'कुमारसंभव' अर्थात् कार्त्तिकेयका जन्म
इसनामसे इसकाव्यका अवसान यहीं अनुमित होता है। पर अब इधर
आगेके और भी दस सर्गोंका पतालगा है,पर वे कालिदासके ही लिखे
हुए हैं वा किसी अन्यके इस विषयमें एक नया बिवाद उत्पन्न होगया
है। बहुतेरे लोगोंकी सम्मति ऐसी कुछ जान पड़ती है कि उन्हें कालि-
दासकृत नहीं मानना चाहिये। क्योंकि यदि कालिदासही इनकी र-
चना करता तो वह इसकाव्यका 'तारकवधम्' वा ऐसाही कोई दूसरा
नाम रखता; 'कुमारसंभव' न रखता। इसके अतिरिक्त कालिदासके
सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथकी टीकाभी सात सर्गोंपर्य्यंतही उपलब्ध
होती है, आगेकी बिलकुल नहीं मिलती;इससे यही दीखपड़ता है कि
यह सर्ग उसके समयमें प्रसिद्ध न थे,वा प्रसिद्धभी हों तो यह कालिदास-
कृत माने नहीं जाते थे। परंतु अपर लोगोंका यहभी मत है कि यह सर्ग
स्वयंकालिदासके लिखे हुए नहीं हैं,स्यात उसके किसी शिष्यके लिखे
हुए होंगे। अर्थात् जिसप्रकारसे कादंबरी ग्रंथका उत्तरभाग वाणभट्ट कवि-
के पुत्रने प्रणीत किया है उसीप्रकारसे स्यात किसी शिष्यने इन्हें लिखा

। इस दूसरी कल्पनाके समर्थनमें यह कहा जा सकता है कि अंतिम सर्गोंकी पूर्वके सर्गोंसे अत्यंत विभिन्नता नहीं बोध होती। बहुतेरे शब्द, शब्द समूह और लेखप्रणाली दोनोंमें एकसी दीखपड़ती हैं। पर प्रौढ़ता और अर्थ चमत्कृति प्रभृतिगुण पहिले सात सर्गोंकी नाईं अंतके सर्गोंमें ध सकेसे नहीं देखपड़ते। यद्यपि इस ग्रंथके विषयमें पंडितोंके उक्त प्रकार भिन्न २ मत पाये जाते हैं तथापि उक्त संशयजालका जबलों निरस हो निश्चयरूपसे कोई बात उपलब्ध नहीं होती तबलों उत्तर सर्गोंकी कर्त्तृताको वादग्रसित समझ हम संप्रति किसी पक्षका अनुधावन नहीं करते।

इस काव्यमें स्थल स्थल पर सुंदर वर्णन हैं, और शृंगार एवं शोक रसकी ओर विशेष ध्यान दिया गया है। यहां यह बात लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि इस ग्रंथके उत्तम श्लोक और संवाद यदि उद्धृत किये जाँय तो बहुत विस्तार हो जायगा। अतः यहांपर इतनाही कहदेना अलम् होगा कि आदिका हिमालय वर्णन, और पांचवें सर्गके कपटवेषधृक् मुनि और पार्वतीका संवाद अत्यंत उत्कृष्ट हैं। पर्वतके ऊपरके अनेक सृष्टि चमत्कारोंके वर्णन परम चमत्कारजनक एवं आनंदोत्पादक हैं। वैसेही पांचवें सर्गमें पार्वतीके प्रेमकी परिक्षालेनेकेलिये कपटमुनिने जो भाषण किया है सो और पार्वतीने उसका जो तिरस्कार किया है सो सब प्रसंग परम सरस और हृदयग्राही हैं।

कालिदासके परमोत्तम ग्रंथ 'रघुवंश' 'मेघदूत' 'शकुंतला' नाटक और 'विक्रमोर्वशी' नाटक हैं; इन्हें उसने प्रौढ़अवस्थामें लिखा होगासा जानपड़ता है। 'रघुवंशमें' सूर्य्यवंशी राजाओंका वर्णन है। दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, कुश और अतिथिके दिग्विजयादि प्रतापों और उनके सांसारिक सुखदुखजन्य अनुभवका वर्णन पहिले सतरह सर्गोंमें किया है। अठारवेंमें अतिथि राजाके वंशजोंका समासवर्णन है; और अंतिम अर्थात् उन्नीसवें सर्गमें रघुवंशके अंतिम राजा अग्निवर्ण

के शृंगार और अंतका वर्णन है। 'रघुवंश' कालिदासके समस्त काव्यों में श्रेष्ठ है। प्रौढ़ और मधुरवर्ण रचना, वर्णनकीशैली, भिन्न २ रसोंका आविर्भाव आदि उसके गुणोंका उक्त काव्यमें पूर्णरूपसे परिचय मिलता है। जिस वंशके गुण कथन करनेके लिये वाल्मिकादि कविश्रेष्ठोंकी वाणी पंगु होगयी, और उसके योगसे जिस वंशकी कीर्त्तिको अमरता प्राप्त हुई, उसीपर आक्षेप कर मैं छोटे मुहँ बड़ा कौरले रहाहूं इसढिटाई के लिये बहुत संकुचित हो यह कविकुलगुरु लिखते हैं :—

मंदःकवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले मोहादुद्बाहुरिववामनः ॥

"जैसे किसी वृक्षके फल केवल ऊंचे मनुष्यको प्राप्य हों, और कोई नाटा मनुष्य लोभके कारण उसकी प्राप्तिकेलिये योंही ऊपरको हाथ उठावे, ठीक वैसेही मन्दमति मैं कवियशकी प्राप्तिके निमित्त व्यर्थ इच्छा करताहूं; एतदर्थ विज्ञलोग मेरा उपहास करेंगे" उक्त कथनसे यह बात निश्चयरूपसे लक्षित होती है कि कालिदासने हाथमें लिये हुए कामको असामान्य समझ उसके पूर्णरूपसे संपादनार्थ कोई बात उठा नहीं रखी। और वास्तवमें यह बात ऐसीही दृष्टिगत होती है। जैसे किसी विशाल नदीका प्रवाह जहां २ देखा जाय वहां २ रमणीक ही भासित होता है तद्वत् इस काव्यका प्रत्येक सर्गही नहीं बरन उसका प्रत्येक श्लोक भी कविके अपूर्वगुणका पूर्णरूपसे परिचय देता है। तथापि रसानुभवमें जहां अन्तःकरण तल्लीन होजाता है ऐसे जो अत्युत्कृष्ट स्थल इस काव्यमें हैं वे आगे उल्लिखित किये जायँगे। सिंह और दिलीप, इन्द्र और रघु, प्रियंवद और अज आदिका प्रसङ्ग; इन्दुमती का स्वयंबर (अथवा छठा सर्ग) विदर्भदेशाधिपतिकी राजधानीमें

अज राजपुत्रका वरप्रवेश और विवाह, अपर राजाओंसे हुए युद्धोंका वर्णन, और तदनन्तर भयभीत हुई इन्दुमतीके साथ वीररस प्रमुख साभिमान संभाषण, पारिजातकी मालाका वृत्तान्त, और इंदुमतीके अर्थ अजका शोक, वसंतोत्सव और दशरथकी मृगयाका वर्णन; राम और भार्गवका प्रसङ्ग; पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर रामने सीताके अभिज्ञानार्थ समुद्र और पूर्व्व वृत्तस्मारक अनेक स्थलोंका जो वर्णन किया, सीताका वनविसर्जन, और मुनिवर बाल्मीक द्वारा उसकी सांत्वना, स्त्री रूपसे आयी हुई अयोध्या और कुशका वार्त्तालाप; ग्रीष्म और जलविहारका वर्णन; और अंतिम सर्गके अग्निवर्णका शृङ्गार वर्णन; इन मेंसे किसी एकका रसास्वादन करतेही सहृदय पाठकोंको कालिदासके कविताकी मनोहरता तत्क्षण विदित होजायगी; और तदर्थ उन्हें अनिवार्य्य अभिरुचि उत्पन्न होगी इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है।

'मेघदूत' को बहुतेरे लोगोंने देखा भलेही न हो पर इसका नाम अवश्यही सुना होगा। और बहुतेरे काव्यरसिक लोग इसके काव्यरसामृत को पान भी करचुके होंगे। यह बहुत छोटा होनेके कारण संस्कृतमें इसे 'खण्डकाव्य' कहते हैं। पर कविताके लोकोत्तर आनन्द देनेवाले अपूर्व गुणोंके कारण यह इतना रमणीक बनगया है कि इसकी समानतामें महा काव्यभी फीके जानपड़ते हैं। इसमें तिलमात्रभी संदेह नहीं है कि कालिदासके अन्य समस्तग्रंथ लुप्तहोकर यदि यही एक लभ्यमान रहता तौ भी इसके कारण वह कविवृंदमें अग्रगण्य माना जाता। काव्यके वर्णनीय विषय प्रायः जगतकी नानाभांतिकी घटनाएं और सामान्यतः दृष्टिपथमें आनेवाले सृष्टि चमत्कारादिहीं हुआ करते हैं; और इनका यथार्थ वर्णन करना यद्यपि सामान्य कविताशक्तिका काम नहीं है, तौ भी ऐसे कवियोंकी ऊनता नहीं पायी जाती, क्योंकि अनुभूत बातोंका वर्णन करना तादृश कठिन नहीं है। पर जहां केवल मनकीही गतिहोती है उस इंद्रियातीत अद्भुत काल्पनिक सृष्टिमें यथेच्छ विहार करने

का अधिकार * 'मिड्समर नाइट्सड्रीम' 'प्याराडैज़लाष्ट' 'मेघदूत' आदिके रचयिता भगवती सरस्वतीके लालोंकोही प्राप्त है! वह विषय अपरलोगोंके लिये अगम्य है। कालिदासके जीवित्व और कवित्वका अद्वैतभाव कैसा पूर्ण था सो उक्त काव्यद्वारा स्पष्ट जाना जाता है; क्योंकि कथासूत्रकी सामग्री कुछ न होनेपरभी कल्पना शक्तिके उदात्त एवं समुज्वल विलासोंसे यह काव्य परिपूर्ण है। इस काव्यकी कथा नितांत सरल एवं चमत्कृतिजनक है। उसके मेलकी कथाका अकेले संस्कृतहीमें नहीं किंतु संसारकी अपरभाषाओंमें भी पाया जाना प्रायः कठिनही बोध होता है। प्राचीन आर्य्य लोगोंके समयसे आज लों जो 'गिरिराज' के नामसे प्रसिद्ध है—और वर्त्तमान अनुसंधानानुसार जिसका उक्त नाम केवल भारतकेही नहीं किन्तु संपूर्ण पृथ्वी के संबंध से यथार्थ हुआ है—और जिसके हिमवेष्टित गगनभेदी उत्तुंगशिखर गंगा यमुनादि पावन महानदियोंके उत्पत्तिस्थान हैं एतावता जिसे, ग्रीसके आलिंपस पर्वतकी नांई यहांके लोग देवोंका वसतिस्थान मानते हैं, उस हिमालय शिखरस्थ अलकापुरीके एक यक्ष को कुबेरका शाप हो उसे प्रिया विरहजन्य परम दुख भोगना पड़ा। कहां हिमालय और कहां रामगिरि! पर निरुपाय होनेके कारण वहांभी उसने वियोगजन्य असह्य दुःखके कई महीने काटे। आगे शीघ्रही पावसके मेघोंकी गर्जना होने लगी। तब उसने गंभीरचिंतामें मग्न हो यह मंसूबा बांधा कि मेरे दीर्घ विरहसे जो पहिलेही कृशहोगयी होगी और अब पावसके मेहोंको देख मेरा वियोग जिसे बहुतही गढ़ाता होगा, उसे वियोगसे मुक्तकरनेके हेतु निजके कुशल संवादद्वारा सांत्वना देनेवाला

* 'मिड् समर नाईट्सड्रीम' (भरधूपकालेकी रात्रिका स्वप्न) शेक्सपीयर के नाटकों में से एक सर्व्वप्रसिद्ध नाटक है। इसका विषय 'मेघदूत' की नाईं केवल कल्पनामय है। 'टेंपष्टे' नाटक में जैसी भूत चेष्टा है वैसीही इसमें पिशाच लीला भरी हुई है। 'प्याराडैज़लाष्ट' मिल्टन के प्रसिद्ध महा काव्य का नाम है।

कोई दूत उसके निकट भेजना चाहिये। पर ऐसा दूत उसे वहां कौन मिला? कोई मनुष्य वा अपर सजीव प्राणी नहीं मिला, तो संसारका संतापहरणाकर उसे जो समृद्धि प्रदान करता है और निजके मनोहर नीलवर्णद्वारा जो सबके, विशेषत: उत्कंठितोंके हृदयको आनंदप्रद होता है, उस मेघकोही उसने दूत मानकर उससे बोलना प्रारंभ किया। यह मेघ अचेतन है, मेराकार्य्य क्योंकर करसकेगा, इसबातकी तर्कना तक उसके मनमें नहीं आयी, इसका कारण यही है कि वह प्रियाके प्रेमातिशयके कारण बिलकुल पागल होगया था। उसके अनंतर वहां से अर्थात् रामगिरिसे ले ठेठ अलकापुरी पर्य्यंत मार्गमें आनेवाले पर्व्वत और नदी आदिका वर्णन उसने मेघको सुनाया। यहांलों इस काव्यका पहला भाग शेष हुआ; यह 'पूर्व्वमेघ' के नामसे परिचित है। 'उत्तर मेघ' में अलकाका वर्णनकर फिर यक्षने अपने मंदिर तथा स्त्रीका वर्णन किया है, और अंतमें उसे संदेश कहा है।

बस इस काव्यकी कथा केवल इतनीही है। पर परमोत्कृष्ट कविको अपनी असामान्य कविता शक्ति प्रगट करनेकेलिये, इसकी अनुकूलता किस प्रकार अत्यन्त आवश्यक है सो सहृदय पाठकोंको सहजही में लक्षित होसकता है। जिस प्रकारसे खगराज गरुड़ उच्चतर वृक्ष और पर्वतोंको तिरस्कृतकर अपने विस्तीर्ण अत: बलवान पंखोंके बलपर आकाशमें अधिकाधिक ऊंचा चढ़ते चला जाता है, वैसेही जिस उद्दाम एवं उदात्त प्रतिभाकी 'कुमारसंभव' और 'रघुवंशादि' ग्रन्थोंमें विषयानुरोधके कारण बीच बीचमें कहीं झलक मालूम देती है, उसीका पूर्णरूपसे विकास होनेके हेतु तदनुरूप इस छोटीसी कथाका कविने प्रयोग किया सा जान पड़ता है। मेघमण्डलसे प्रकृतिदेवीके जो चमत्कार दृष्टिपथमें आते हैं, और पुराण तथा लोगोंमें जो अचल और नदी तथा अपर स्थान प्रसिद्ध हैं उनका वर्णन इसमें नितांत सरस किया गया है। वैसेही श्रीराम, सीता, अर्जुन, बलराम आदिकोंके

पुनीत चरित्रोंसे जो जो स्थान विख्यात हुए हैं उन सबके यथावत् वर्णन और उज्जैन तथा हिमालय पर शिवसेवार्थ अथच अन्यान्य प्रसंगोंपर कामरूप मेघको जो नाना भांतिके रूप ग्रहण करनेका निर्देश वर्णित किया है उन सबके योगसे इस काव्यकी शोभा बहुतही बढ़गयी है।'उत्तरमेघमें' भी अलकापुरीका वर्णन बहुत मनोहर कियागया है,यक्षके स्त्रीकी विरहावस्था तथा अंतिम संदेशका वर्णन अत्यंत करुणरस भरितहै। वृत्तोंकी योजनाभी बड़े बहारकी है, उसके योगसे उक्त काव्यको और भी शोभा प्राप्त हुई है। वृत्तोंको मानों अर्थ गौरवके कारण जो मंदगति प्राप्त हुई है, वैसेही पदलालित्य, रूपविशदत्वादि अपर गुणोंद्वारा सहृदय पाठकोंको कविकी नायिकाका साक्षात् परिचय होनेमें कोई कसरनहीं जानपड़ती। साथही कल्पनाकी आनंदमय सृष्टिमें मन नितांत लीनहो कुछ कालके लिये उनकी इस संसारकी सुध बुध सब जाती रहती है।

कालिदास कवियोंकी मालिकामें जैसे अग्रगण्य माना जाता है वैसेही वह नाटक लेखकोंकी श्रेणीमें प्रथम माना जाकर समादृत किया जाता है। अथवा उसकी वर्त्तमान विशेष ख्यातिका कारण उक्त दूसरा गुणही मानना चाहिये। उसके 'मालविकाग्निमित्र' नाटकके विषयमें पंडितोंकी भिन्न सम्मतिका पीछे उल्लेख होही चुका है; अबशेष दो नाटक 'शकुंतला' और 'विक्रमोर्वशी' के विषय में आलोचना की जाती है उक्त दोनों नाटकोंकी उनमेंसे भी पहिले की इस देशमें पूर्वहीसे जैसी कुछ प्रतिष्ठा मानी जाती है उसके विषयमें आज कोई नई बात कहनेको नहीं है। प्रत्येक काव्यप्रिय पंडितके जिह्वाग्रपर उसके पद्य और 'काव्येषुनाटकं रम्यं तत्र रम्यं शकुंतला। तत्रापिच चतुर्थोऽकस्तत्रश्लोकचतुष्टयम्॥" यह श्लोक पायाही जाता है। यहां पर लिखने के योग्य विशेष बात यही है कि हमारे कविकी जो अजरामर कीर्त्ति प्रथम देशांतर व्यापिनी हो अनन्तर समस्त भूमण्डल पर विस्तृ

हुई उसका कारण यही 'शकुंतला' नाटक है। वह इस प्रकारसे कि अनुमान सौ सवा सौ वर्षके पूर्व बङ्गाल हातेमें सरविलियम् जोन्स नामके एक परम विद्वान् साहब न्यायाधिपति थे, उन्हें एकबार एक पंडितद्वारा ज्ञात हुआ कि संस्कृत भाषामें नाटक ग्रन्थ पाये जाते हैं। यह बात उन्हें ज्ञात होतेही उनने बड़े परिश्रमसे संस्कृत भाषाको अधीत किया और "शकुंतला" नाटकको अङ्गरेजीमें अनुवादितकर उसे योरोपमें प्रकाशित किया। उसे देख योरोपके बहुतेरे पण्डितोंका मन उसपर इतना मोहित होगया कि उन लोगोंने कालिदासको तत्क्षण महाकवियोंमें परिगणित किया। जर्मनीदेशके कवि चूड़ामणि गेटी, सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता एवं प्रवासी हंबोल्ड और पण्डितश्रेष्ठ श्लेजेल आदिने हमारे कविकी अनुपम कविताका केवल अनुवादरूपसे रसपानकर आनन्दातिशयमें मग्न हो शिरःप्रकंप किया है। सहृदयताका पूर्णरूपसे परिचय दे उक्त रसिक शिरोमणि विद्वानोंने शकुंतलाकी जो समालोचना की हैं उन्हें हम सबको और विशेषकर हिन्दू लोगोंको उचित है कि अपने २ हृदयपटलपर अंकित करलें। वह यहां भी उद्धृत करदी जातीं पर वैसा करना योग्य नहीं जान पड़ता। क्योंकि वह सर्व्वप्रसिद्ध होनेके कारण उनका उल्लेख यहां केवल पुनरुक्तिही होगा। *

---

* तौभी वह हमारे समस्त पाठकोंको स्यात विदित न होंगी अतः नीचे उद्धृत की जाती हैं:—

"Wouldst thou the young year's blossoms and the fruits of its decline, And all by which the soul is charmed, enraptured, feasted, fed? Would thou the earth and heaven itself in one sole name combine? I name thee, O Sakoontala! and all at once is said."

GOETHE.

"Kálidása the celebrated author of the 'Sakoontala;' is a masterly describer of the influence which Nature exercises upon the minds of lovers. Tenderness in the expression of feeling, and richness of creative fancy have

'शकुंतला' नाटक महाभारतांतर्गत आदिपर्वकी एक कथाके आधारसे रचा गया है। वहांकी मूलकी कथा यों है कि जब दुष्यंत राजा आखेट खेलनेको गया था तब परिश्रांत होकर वह कण्व ऋषिके आश्रमपर गया। वहां कण्व ऋषिकी कन्या शकुंतलाके अतिरिक्त और कोई न था। उसने राजाकी स्वागत पूंछ अतिथिसत्कार द्वारा उसे सत्कृत किया। राजा उसके मनोहररूपको देख विवश होगया, राजाके प्रश्नकरने पर शकुंतलाने अपना जीवनवृत्तान्त उसे निवेदन किया। सो सुन उसे क्षत्रीकी कन्या जान दुष्यंत राजाने गंधर्व विवाहकी विधिसे उसका पाणिग्रहण किया। अनंतर दुष्यंत अपने नगरको लौट आया, पर मुनि शापके भयके कारण उसने शकुंतलाको बिदाकरालानेके लिये किसीको नहीं भेजा। इधर कण्व ऋषिने कन्याकी कृतिपर कुपित न हो उलटे उसके योग्य वरके साथ परिणीत होजानेपर अपना आनंद प्रकाशित किया; और अपने शिष्योंको साथ दे उसे दुष्यंत राजाके नगरको पहुंचा दिया। शकुंतलापर राजाका प्रेम यत्किंचित्भी न घटा था पर तौभी जनापवादके कारण वह उसे अंगीकृत करनेमें हिचकता था। एतावता तू कौन है? यह लड़का किसका है? आदि मिथ्या कारण उपस्थितकर राजा उसका अपमान करने लगा। शकुंतलाने भी कुपित हो राजाको बहुत उत्तर दिये और उस कोपावेशमें वह वहांसे निकल जानेकोही थी कि इतने में यह आकाश

assigned to him his lofty place among the poets of all nations."

ALEXANDER VON-HUMBOLDT.

"No composition of Kálidása displays more the richness his poetical genius, the exuberance of his imagination, the warmth and play of his fancy, his profound knowledge of the human heart, his delicate appreciation of its most refined and tender emotions, his familiarity with the workings and counter-workings of its conflicting feelings—in short, more entitles him to rank as the Shakespere of India."

M. WILLIAMS.

वाणी हुई कि राजा दुष्यंत, यह तेरीही स्त्री है। उक्त आकाशवाणी-को सत्यमान राजाने उसे अपनी पट्टरानी बनाया और उसके पुत्र भरतको कुछ कालके अनंतर युवराजपदाभिषिक्त किया।

उक्त कथाको पढ़ बहुतेरे अनभिज्ञ पाठक स्यात यही बिचारेंगे कि उत्कृष्ट नाटक रचनाकी सामग्री इसमें क्या है? पर वास्तवमें कालिदास-के सकल बुद्धिगुणोंका एकत्र विकास होनेकेलिये इससे अधिकतर अनुकूल विषयका हस्तगत होना दुस्साध्य है। महाभारतरूप अगाध आकरसे हमारे चतुर शिल्पीने इस रत्नको निकाल अपनी अनोखी कार्य्यकुशलता और कार्य्यसंपादन पटुताद्वारा उसे ऐसे दिव्य कुंदनमें खचित किया है कि उसपरसे शेष सब निछावर करडाले जायँ। अब यह बात कहां २ और किस २ प्रकार से संपादित की गयी है सो सविस्तर आगे लिखी जाती है। मूलकी कथामें यह बात पायी जाती है कि राजा को शकुंतला आश्रममें अकेली मिली और उसीने अपना जन्म वृत्तान्त राजाको कह सुनाया और दोनोंका गंधर्वविवाह प्रत्यक्षही हुआ। ये दोनों बातें काव्यमें ऐसी कुछ भिन्न और बिलग नहीं जान पड़तीं; पर जहां मनके नैसर्गिक व्यापार विशेष रूपसे प्रदर्शित करना होते हैं उस नाटकमें अत्यंत अयोग्य एवं अनुचित बोध होती हैं; तिस परभी नायिकाके कुलकानिका इसके समान प्रचंड विरोधी और कुछ नहीं है। इस दोषको दूर करनेके अभिप्रायसे कालिदासने शकुंतला-की दो सखी कल्पित कीं, और उनमेंसे एकके द्वारा वह वृत्तान्त कथित कराया है। और आगे गान्धर्वविवाहकी बात भी वैसीही उन-के द्वारा घटनानुरोधसे संघटित करायी है। उसी प्रकारसे आदि-में शकुंतला और राजाकी भेंट वृक्षवनमें करा, वनवासी कुमारोचित एवं कविजनप्रिय वृक्षसेचनादि कार्य्योंमें लगी हुई उसे प्रदर्शित किया है। दुष्यंत राजा कपटदोषसे दूषित न होनेपावे इस अभिप्राय से दुर्वासा ऋषिका शाप, और शकुंतलाको दी हुई अंगूठीका शक्रतीर्थ-

में पतित होना ये दो नई बातें कल्पित की हैं । पांचवें अंकके अंतमेंही उक्त कथा शेष होगयी है । पर राजाके शंकुतलाको न पहिचानने और उसके दुखीहो निकलजाने पर उसकी मा मेनकाका उसे सहसा उठालेजाना नूतन जोड़कर नाटकके अंतिम दो अंकोंकी कविने बिलकुल नई रचना की है । छठे अंकके आदिमें एक मछुवाके पास वह अंगूठी पायी गयी और राजाको उसके विषयमें शापहतस्मृति पुनः हो आयी, और मेनकाकी सखी सानुमती अप्सरा जब गुप्तभावसे उसके निकट खड़ी थी तब राजा शकुंतलाके भूतपूर्व वृत्तांतका स्मरणकर उसके विरह दुखसे कातर हो उसकी पुनः प्राप्ति की निराशाके कारण पागलसा होगया है । आगे इन्द्रका सारथी मातलि वहां आया है और दैत्यवधार्थ उसे स्वर्गको लेगया है । सातवें अंकमें मातलि दुष्यंतको भूलोकको लौटा ला रहा था तब राजाको इच्छा हुई कि हेमकूट पर जाकर मारीचके दर्शन करना चाहिये, अतः उसने रथ वहीं उतारा, वहां उसे शकुंतला और पुत्र भरतकी अचिंत्य भेंट का लाभ हुआ, और अंतमें मारीच अथच अदितिका साक्षात्कारकर उनसे आशीर्वाद प्राप्तकर दुष्यंत राजा वहांसे अपने नगरको लौट आया है । मारीच और अदिति नाटकके अंतमें क्यों लाये गये हैं इसका कारण स्पष्टही है । संस्कृतनाटकप्रणयनप्रथानुसार नायक दुष्यंत और नायिका शकुंतला पिछले सब संकटोंको भोगकर लब्धमनोरथ हुए इसीप्रकार सदा सुखसे रहें ऐसा आशीर्वाद उनसे दिलाया है; और अब तुम्हें किस वरकी इच्छा है ऐसा उनके पूछनेपर राजा दुष्यंतने चर्चरीके (भरतवाक्यके) रूपसे समस्त भ्रातृगणोंकेलिये आशीर्वचन किया है; और वह कविके इष्टदेव शिवकी प्रार्थनास्वरूपमें है ।

हमारे कविकुलकमलदिवाकरने मानो यह पहिलेसेही जानकर कि मेरी यह रचना आगे चिरकाललों रसिकजनपरम्पराद्वारा समादृत होगी और अन्य सब काव्योंकी अपेक्षा इसीद्वारा मेरा कवित्वयश

दशों दिशाओंमें फैलेगा, इस नाटकमें अपने बुद्धिविभवकी पराकाष्ठा प्रदर्शित की है। नाटकके जिस जिस अंगपर दृष्टिपात कीजियेगा उसेस्वयं सर्वांगपूर्ण पाइयेगा और इसके सिवाय उसके शेष अंगोंसे उसका परमोत्कृष्ट मेल मिलते चला जाता है। प्रथम कथासूत्रकोही देखिये। वह इतना चतुराईसे रचा गया है कि उसमें किंचित् ऊनता वा अधिकता कहीं नहीं दीखपड़ती। मूलकी कथामें कैसे २ हेरफेर किये हैं सो पीछे उल्लिखित होहीचुका है; पर उनकी अपेक्षा और भी कई विशेष बातें कविने रस विशेषको परिपुष्ट करनेकेहेतु प्रयुक्त की हैं उनका उल्लेख संक्षेपमें यहां किया जाता है। प्रथम अंकमें भ्रमरका कमलकी भ्रांतिसे शकुंतलाके मुखपर आना, चौथेमें मृगशावकका उसके पाओंके आड़आना, पांचवेंके आदिमें राजाको उत्कंठित करनेवाली अन्योक्तिगर्भित गीतमालिका, छठेमें शकुंतलाकी प्रतिकृतिको देख क्षणभर उसके साक्षात्कारका लाभ, और लक्ष्मीकृपापात्र धनमित्रके मृत्यु समाचारको सुन उसके संतानहीन होनेके कारण खिन्न हो राजाका मूर्च्छित होना, उक्त घटनाओंमेंसे प्रत्येक द्वारा समस्त आख्यायिका किस उत्तमताके साथ शृंखलाबद्ध होती गयी है और जहां तहांका रस कितना उत्कृष्ट सधा है, उसका विशेष वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वैसेही कविने सगुनोंका भी बहुत उत्तम प्रयोग किया है। पुराकालमें लोगोंका उनपर विश्वास होनेके कारण कवियोंको और विशेषतः नाटक प्रणेतृगणोंको आख्यायिकाके जोड़नेमें वे परम उपयोगी हुए हैं। यह दो प्रकारसे उपयोगी होते हैं। एकतो दर्शक वा श्रोताओंको आगेकी कथाकी पहिले सूचना देनेमें, जैसे वर्त्तमान नाटकमें प्रथम और अन्तिम अंकके आदिमें राजाके बाहुस्फुरणद्वारा सूचित किया गया है। और दूसरे किसी भूत वा भविष्यत् भयोत्पादक घटनाकी सूचनाद्वारा मनको दुखी करनेमें। यह दूसरी बात इस नाटकके चौथे अंकमें पायी जाती है। शकुंतला दुष्यंतके नगरकेलिये जब प्रस्थित

हुई, मार्गमें उसने एक चक्रवाकीको देखा, उसका पति निकट
कमलपत्रकी ओटहीमें था पर उसे वह दूर जान आक्रोश करती थी
यह घटना है तो एक क्षुद्र पर उसके योगसे शकुंतला और उसकी स
मनमें भयभीत हुई, और वही अवस्था प्रेक्षक तथा पाठकोंकी भी होती
है। इसके जोड़नेकी शैली अन्तिम तीन अंकोंमें तो बहुतही चमत्कृ
तिजनक है; किंचित् ध्यानपूर्व्वक नाटक पढ़नेसे वह लक्षित हो सकता
है। वर्णनोंका प्रसंग नाटकोंमें प्राय: अधिक नहीं रहा करता है,
वर्त्तमान नाटकमें जहांकहीं वह आयही गया है वहां हमारे कविने उ
सर्व्वांग पूर्णकरनेमें कोई बात उठा नहीं रखी है । यह बात कहते हा
तनिक भी नहीं हिचकते कि प्रथम अंकमें जैसा वर्णन मृगगण औ
रथवेगका हमारे कविकुलगुरुने किया है वैसा संसारभरके कवियों
के ग्रंथोंमें स्यातही पाया जाय । पुत्रकी बाललीलाको देख पिता
हृदयमें कैसी आनंद वृत्तियां समुत्पन्न होती हैं सो सातवें अंकके जि
श्लोक में वर्णित की हैं उन्हें पढ़ते ही शेफ्री नामक फ्रेंच पंडित आन
दातिशयमें मग्नहो विदेह होगयाथा सो बात सर्वप्रसिद्धही है। वैसे
छठे अंकमें शकुंतलाकी अधूड़ी प्रतिकृतिको किस प्रकारसे पूर्ण क
रनाचाहिये और उसके आसपासका दृश्य किस प्रकारका होनाचा
हिये एतद्विषयक जो श्लोक हैं उनका वर्णन ऐसा चित्तको मुग्धकर
वाला है कि उससे और कुछ नहीं तो यह बात मानलेने में तो को
आपत्तिही नहीं है कि हमारे कविचूड़ामणि चित्रकलाके अच्छे ज्ञा
ता थे। अस्तु; इसनाटककी लेखप्रणालीको हमारे कविने यथासंभ
परमोत्कृष्ट करनेमें कोई बात शेष नहीं रखी है सो स्पष्टही है। पद्यकी त
बातही क्या है, पर गद्यकाभी प्रत्येक शब्द जितना कर्णमधुर औ
उपयुक्त प्राप्त हो सका है, यथा स्थानपर प्रयुक्त किया गया है। यों तो य
बात सर्वप्रसिद्धही है कि कालिदासकी कविता प्रसाद गुणसंपन्न है, प
उसकी बहार इसग्रंथमें सविशेषसी लक्षित होती है। सारांश 'साकूतमधु

कोमलाविलासिनीकंठकूजितप्राया' यह जो गोवर्द्धनाचार्य्यने कालिदासकी उक्तिको विशेषण दिया है उसका पूर्ण प्रत्यय इस नाटकमें मिलता है । इसमें रसोंका निर्वाह जिस उत्तमताके साथ किया गया है उसका विस्तृत वर्णन करनेकी स्वयं कविनेही कोई आवश्यकता नहीं रखी है । जिन्हें अणुमात्रभी सहृदयता संप्राप्त है उन्हें वे साक्षात् अनुभूत हो वह वह घटना मानो प्रत्यक्ष उनके समीप उपस्थित हो जाती है । और चित्तवृत्ति मानो मंत्रसे अभिमन्त्रित हो इतनी तल्लीन हो जाती है कि बाह्यसृष्टिका ज्ञान विस्मृत हो नाटकके पात्र विशेषसे पाठक या प्रेक्षकको तदात्मता प्राप्त हो जाती है । इसके उदाहरण स्वरूपमें यह कहा जा सकता है कि ऐसा कौन होगा कि जिसने यह नाटक पढ़तीबार चौथे अंकके पृष्ठोंपर टिप्पणी न की होगी ? तात्पर्य्य, इस नाटकका कोई भी अंक ले लीजिये, जहां जहां देखियेगा वहां इस कविवरकी पराकाष्ठाही दृष्टिगत होगी । जैसे 'मृच्छकटिक' में दरिद्र चारुदत्तका मित्र विदूषक वसंतसेनाकी हवेलीका चौक देख चकित और विस्मित हो गया, और जो जो नई वस्तु उसे वहां दीख पड़ती वह उसे अत्यंत मनोहर जान पड़ती ठीक वैसीही अवस्था यहां सहृदय पाठकोंकी हो जाती है । जिसअंकके पृष्ठ लौटाइये नई नई बहार दृष्टिपथमें आती है, और प्रत्येककी भिन्न २ रचना अधिक उत्तम कहनी चाहिये, या सबके मेलको परमोत्कृष्ट कहना चाहिये, इसका निश्चय सहसा नहीं हो सकता ?

'विक्रमोर्वशी' नाटक 'शकुंतला' नाटककी अपेक्षा योग्यतामें किंचित् ऊन माना जाता है । इसे भी अंगरेज़ीमें अनुवादितकर विलसन साहबने प्रकाशित किया है । यह साहब कलकत्तेमें कई वर्षलों संस्कृत भाषाके प्रधान अध्यापक थे, संस्कृतकी आपको बहुत अभिरुचि थी अतः आपने उसकी बहुत कुछ उन्नति की । इस नाटककी भूमिकामें उक्त साहबने लिखा है कि इसकी कथा अग्निपुराणसे ली गयी है और

वह सब अन्योक्तिपूरित है । इस नाटकके नायक और नायिका यथा
क्रम सूर्य्य और ऊषा अर्थात् प्रभातके प्रतिनिधि हैं । सूर्य्य और ऊष
आदिमें एकत्रित होनेके पश्चात् शीघ्रही वियुक्त होते हैं, विरही सूर्य
के दिनभर उत्तुंग पर्वत और विशाल नदियोंपर भ्रमण करनेके अनं
तर पुनः उनकी भेंट होती है । यह घटना नाटकमें किसप्रकारसे लायी
गयी है सो समझनेके अर्थ उसकी आख्यायिका ज्ञात होनी चाहिये
अतः वह नीचे लिखी जाती है ।

इस नाटकका नायक राजा पुरूरवा और नायिका अप्सरा उर्वशी
हैं। उर्वशी जब धनपति कुबेरके मंदिरसे लौटकर आरही थी तब केशी
नामके दैत्यने उसे अपहृत किया । तब उसकी सहेलियां बड़े जोर
विलाप करने लगीं । उनके आक्रोशको सुन पुरूरवा रथारूढ़ हो उनकी
बतायी हुई दिशाको लपका, और राक्षसोंको जीतकर उर्वशी औ
उसकी सखी चित्रलेखाको लेकर लौट आया । अनंतर उन दोनोंको
वह दूसरी अप्सराओंके आधीन कर रहा था कि उतनेमें वहां चित्रर
गंधर्वने आकर राजासे कहा कि आपके पराक्रमपर अमरनाथ इन्द्र
संतोष प्रकाशित कर उर्वशीको साथले आपको बोलाया है । संप्रा
कोई आवश्यक काम उपस्थित है ऐसा कहकर राजा वहां नहीं गय
अनन्तर उर्व्वशी और अपर अप्सरा भी वहां से निकल गयीं । अ
राजा मदन विह्वल हो विदूषकके साथ उपवनमें बैठे यह चिंता क
रहा था कि उर्व्वशी मुझे किस प्रकारसे प्राप्त होगी कि उतनेमें वह अ
पनी सखी चित्रलेखाके साथ गुप्तभावसे वहां आयी । उसने एक भू
पत्र पर मदनलेख लिख राजाकी ओर फेंक प्रकाशरूपसे वह राजाक
जयजयकार करतीही थी कि उतनेमें देवदूतने आकर कहा " चि
लेखा, उर्व्वशीको लेकर शीघ्र चल, इन्द्रकी सभामें नाटक खेलना है।
उक्त वाणीको सुन अत्यंत खिन्न हो उर्व्वशी वहां से निकल गयी । इत
में वह भोजपत्र वायुसे उड़कर रानीके हाथ लगा, राजा उसे खोग

समझ बड़ी चिंताके साथ ढूंढ़रहा था कि रानीने वह लाकर उसको दिया । रानीसे उसे पा राजा बहुत लज्जित हुआ और रानी सकोप वहांसे चली गयी । आगे रानीकोही तदर्थ अनुताप हो उसने चंद्रसाक्षिक प्रियप्रसादन व्रत किया, और विनीतभावपूर्व्वक राजासे निवेदन किया कि अब पुन: मुझसे ऐसा उपरोध न होगा । पर इतनेपर भी राजाको उर्वशीके समागमका सुख चिरकाल लों प्राप्त नहीं हुआ । एक बार उर्व्वशी गंधमादन वनसे योंही जा रही थी कि भूलकर कुमारबन-में जा निकली, और वहां पहुंचतेही वह लता हो गयी । * तबकी राजाकी अवस्थाका क्या पूछना है । वह बिलकुल पागल होगया और मार्गमें उसे जो मिलता उसीसे अपनी प्रियाकी वार्त्ता पूंछता । इस प्रकारसे फिरते फिरते वह उक्त लताके निकट जा पहुंचा और उसे लपटतेही वह पुन: उर्व्वशी होगयी । उर्व्वशीकी उस भेंटका लाभ उसे संगमनीय मणिकी प्राप्तिका कारण हुआ । इस मणिको राजा-ने बड़े यत्न से रखा था; पर एक दिन एक गीध उसे मांस जान उठा ले गया । उसके पीछे राजा भी दौड़ा, पर मणि उसके हाथ न लगा । अनंतर वह बाणसे छिन्न भिन्न हो सहसा धरती पर गिरपड़ा; वह बाण किसका होगा इसका अनुसंधान करने पर ज्ञात हुआ कि वह राजाके पुत्र दीर्घायुका था । इस प्रकारसे राजाकी अपने पुत्रसे भेंट हुई । अंतमें नारदने आकर राजाको सूचित किया कि, उर्व्वशी-का शाप यद्यपि अब शेष होगया है तथापि वह आगे तुम्हारे ही पास रहे ऐसा इंद्रने तुम्हें वर दिया है । इस प्रकारसे राजाके समस्त मनो-रथ परिपूर्ण हुए ।

---

* इस वनको कुमारका (कार्त्तिकेयका) शाप था कि मेरे तपको भ्रष्टकरनेके हेतु जो स्त्री यहां आवेगी वह लतारूप हो जायगी । आगे उच्छापके योगसे उर्वशी को उसका पूर्व्वरूप प्राप्त हुआ ।

अब यह वात सच है कि इस नाटकके समस्त गुणोंकी आलोचना करनेसे यह नाटक उत्तम ग्रंथोंमें परिगणित करने योग्य पाया जाता है, पर तौ भी हम समझते हैं कि यदि 'शकुंतला' के साथ इसकी तुलना की जाय तो यह फीका जान पड़ेगा। आख्यायिकाचातुर्य्यादि पीछे कहे हुए जिन अनेक गुणोंके कारण दूसरा ग्रंथ अद्वितीय माना जाता है, वे सब गुण पहिले में पूर्णरूप से दृग्गोचर नहीं होते; हां कहीं कहीं उनकी झलक अवश्य दीख पड़ती है। इस के सिवाय कालिदास जैसे विशालबुद्धिसंपन्नकविकी कुशाग्रबुद्धिके अनुसार इन उभय नाटकोंमें जो भिन्नता होनी चाहिये थी, और प्रत्येकमें मनोरंजन करने वाले चमत्कृतिजनक जो भिन्न २ स्थल होने चाहिये थे, वह वर्त्तमान नाटकमें वहुधा नहीं पाये जाते। आदिमें रथारूढ़ राजाका प्रवेश, और अंतमें राजाकी और उसके पुत्रकी भेंट प्रभृति 'शकुंतला'में लिखी हुई बातें पुनः इस नाटकमें लिखी जाने, और 'मेघदूत' 'रघुवंश' आदिमें अनेक वार उल्लिखित हो जिनकी नूतन शोभा कभीकी नष्ट हो गयी है. ऐसे कई विचार इस नाटकमें पुनः उल्लिखित होनेके कारण इस नाटककी वहुत कुछ रसहानि हुई है; और यही कारण है कि पाठकोंका चित्त जैसा चाहिये वैसा इससे नहीं भरता। पांच अंकोंमें प्रथम और चतुर्थ ये दोही उत्कृष्ट हैं चौथेमें स्त्री प्रेमके कारण पागल हुए राजाका पशु पक्षी आदिकोंसे वात चीत करना, और उससे भी अधिक प्राकृत भाषाके कर्ण मधुर गीत नितान्त मनोहर हैं। पर पहिलेकी छटा इससे भी अनूठी है। हमारे कविका मन नगाधिप हिमालयके भव्य एवं रमणीक शिखरोंका निर्भर प्रेमपूर्वक कैसा लोभी वनारहा करता था सो इससे स्पष्ट लक्षित होता है। 'शकुंतला' के अंतिम अंकमें जिस हेमकूटके शिखर पर दीर्घ विरहके अनंतर दुष्यंत और शकुंतलाकी भेंट कराकर नाटकका उपसंहार किया गया है, उसीपर इस 'विक्रमोर्वशी' नाटकके प्रथम

स्थलकी कल्पना कर, भय मूर्च्छित उर्व्वशीको राजाने उसकी सहेलियोंके आधीन किया है और दोनोंकी चार आंखें हो वे परस्पर के प्रेमासक्त हुए हैं। कविने इस प्रथम गर्भांककी कल्पना बहुत चतुराई से कर उसकी रचना भी वैसीही परमोत्कृष्ट की है। इसका रस उदात्त मिश्रित शृंगार है। उर्वशीकी मूर्च्छाके धीरे धीरे टूटने और उसके नेत्र खोलने पर राजाको जो आनंद और विस्मय हुआ है तदादि बातोंका वर्णन इसमें इतना यथार्थ है कि वे घटनाएं पाठकोंके चित्त पर खचित-सी हो आगे कभी मिटने नहीं पातीं। पहिले अंकको पढ़ पाठकोंको उत्साह बढ़ता है कि आगे भी यह ग्रंथ सब ऐसा ही होगा, पर उक्त आशा सर्वथा व्यर्थ एवं विफल होती है क्योंकि जो बातें सामान्य नाटकोंमें भी पायी जाती हैं, और जिन बातोंका पाठकोंके मनमें योंही आविर्भाव होता है, वेही आगे मिलती हैं।

यहां लों कालिदासके बड़े बड़े ग्रंथोंका वर्णन हुआ। पर इनकी अपेक्षा 'श्रुतबोध' 'शृंगारतिलक,' और 'शृंगाररसाष्टक' आदि छोटे २ ग्रंथ और भी हैं। यह ग्रंथ भी उक्त ग्रंथों कैसेही प्रसिद्ध हैं, अतः यहां उनकी उपेक्षा करना न्यायसंगत नहीं है। 'श्रुतबोध' में जिस वृत्तका लक्षण उसी वृत्तमें कहा गया है, और इसका अभिप्राय ग्रंथके नाम द्वाराही सूचित किया गया है कि उसकी सहायतासे वृत्त विशेष का लक्षण केवल 'श्रवण करतेही ज्ञात' होजाय। पूर्व्वोल्लिखित महान् ग्रंथों द्वारा जिसने पहिलेही अखंड कीर्त्ति बटोर ली, वा उसका संपादित करना कोई दुःसाध्य कार्य्य नहीं है ऐसा जिसे सुदृढ़ विश्वास था, उसीने विद्यार्थियोंको छंदोंका बोध करादेनेके अभिप्रायसे इस छोटे-से कार्य्यको अंगीकृत किया होगा इस विषयमें सामान्य बुद्धिके मनुष्योंको बड़ी विलक्षणता जान पड़ती होगी। परंतु बड़ोंके चरित्र और उनकी महिमाका अल्पबुद्धिके लोगों को थाह मिलना केवल दुःसाध्य ही नहीं है, किन्तु कई बार ऐसा भी देखा गया है कि, सच्चे बड़प्पनका

लोगोंको यथातथ्य बोध न होनेके कारण उनके परम श्लाघ्यकार्योंको भी लोग अन्यथाही समझ लेते हैं। इस बातका बढ़िया उदाहरण कालिदासकी उक्त कृतिही है। इस उल्लेखके साथ और एक ऐसीही दूसरी बातका उल्लेख यहां पर किये बिना आगेको लेखनी नहीं चलती। वह किसी ऐसे वैसे सामान्य व्यक्तिका नहीं है तो हमारे कविकी नाईं ही जिसकी समुज्ज्वल कीर्त्ति स्वदेशको अलंकृतकर सब जगमें फैली है उस भुवनविख्यात मिल्टन कविके विषयमें है। इन्ने अपने कविकी नाईं भगवती सरस्वतीप्रदत्त माथे परके मुकुटको क्षणभरके लिये उतार स्वभाषाके एक व्याकरण ग्रन्थको लिख सर्व साधारणके हितका परमोदार परिचय दिया है। ये दोनों उदाहरण इस बातको स्पष्टरूपसे प्रमाणित करते हैं कि अहंपनका अभाव सच्चे बड़प्पनका एक प्रधान चिह्न है। अस्तु; इस ग्रन्थको भी हमारे कविने 'ऋतुसंहार' की नाईं अपनी प्रियाको संबोधन दे लिखा है। इसमें सिवाय माधुरता और लालित्यादिके कि जो केवल पदरचनाकेही गुण कहे जाते हैं काव्यके अपर गुणोंका समाविष्ट करना असंभवही है। अतः इस ग्रंथमें सदाकी नाईं वही परिपूर्णरूपसे पाये जाते हैं। 'शृंगारतिलक' और 'शृंगाररसाष्टक' में शृंगार प्रधान स्फुट श्लोक हैं। यह सब कालिदासकृत होंगेसे नहीं जानपड़ते; क्योंकि बहुतेरे श्लोक तो ऐसेही हैं कि जिनमें सिवाय फूहड़पन और लंपटताके अपर कोई भी गुण नहीं पाया जाता। इस कथनका यह अभिप्राय नहीं है कि उक्त ग्रन्थमें कालिदासकी रचना बिलकुल नहीं है। हां इतना अलबत्ते है कि ऐसे श्लोक बहुत कम हैं कि जिनसे कालिदासकी कविताका रस टपकता है। इसके सिवा दूसरा कारण यह भी कहा जासकता है कि जिस कालरूप विस्तीर्ण समुद्रपर बड़े बड़े संपूर्ण काव्योंका भी निर्वाह यदि हुआही तो अत्यन्त कठिनतासे हो पाता है, उसीको उल्लंघितकर यह 'तिलक' बिना किसी पकसंपन्न हुए, वा यह 'अष्टक' अविकलरूप से पूरा इस तौर पर्य

सुखपूर्व्वक आपहुंचा होगा, यह भी बड़ी सावधानीपूर्व्वक कहना चाहिये। इससे तो यही निर्द्धारित होता है कि शृंगार रसके जो सैकड़ों श्लोक पण्डितोंके मुंहसे सुने जाते हैं उनमेंसे बहुत कुछ इनमें सन्निविष्ट करादियेसे जान पड़ते हैं॥

सर्वसाधारणमें यह चर्चा भी श्रवणगत होती है कि दक्षिणी लोगोंके यहां विवाहके समय जो मंगलाष्टक पढ़े जाते हैं वे भी कालिदासकृत हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि इस क्षुद्र बातका यहांपर उल्लिखित होना हमारे बहुतेरे पाठकोंको स्यात हँसीका कारण जान पड़ेगा; और उन लोगोंका ऐसा समझना भी कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है क्योंकि आज कल हम लोगोंमें गुणकी चाह और उसका सन्मान करनेकी मनोकामना कहांलों पाई जाती है सो विज्ञ एवं विवेकी पाठकों पर विदित ही है। संसारमें बहुधा यह भी देखा जाता है कि कधी कधी वस्तु विशेष विख्यात मनुष्यके संबन्धके योग से महत्त्वको प्राप्त हो जाती है; और इस बातका टुक भी विचार नहीं किया जाता कि वह वस्तु विशेष उस विख्यात पुरुषकी कीर्त्तिका आधार स्तंभ है वा नहीं; और कहांलों कभी कभी तो ऐसे पुरुष और वस्तु विशेषका संबन्धही संदिग्ध पाया जाता है! स्ट्राटफर्डमें रखी हुई शेक्सपियरकी कुर्सीको देखनेकेलिये चारों ओरसे लाखों लोग क्यों जाया करते हैं! क्या वह विधिनिर्म्मित है? सुना जाता है कि उस कविकुलदीपने एक वृक्ष अपने हाथसे लगाया था जिसे एक मनुष्यके तोड़ डालनेपर उस गांवके सब लोगोंने उस पर आक्रमण कर उसे दंडित किया था! कहिये इसका कारण क्या कहा जा सकता है? उसने उस गांवके लोगोंका ऐसा कौनसा प्रचण्ड अपराध किया था? इसके उत्तरमें यही कहा जासकता है कि शेक्सपियरका प्रत्यक्ष स्मारक होनेके कारण जिसे मानो पवित्रता प्राप्त होगई थी; और जो उनके आनन्द तथा अभिमानका आधार स्वरूप होगया था, उस वृक्षको नष्टकर उसने उन लोगोंकी

ऐसी हानि की कि जिसका पुनः प्राप्त होना असंभव था। उक्त दोनों घटनाएं इस बातको स्पष्टरूपसे प्रमाणित करती हैं कि महान् महान् पुरुषोंके संबन्धकी क्षुद्रबातोंको समादृत करना नीचता वा मूर्खता का प्रदर्शक नहीं होसकता किन्तु विचारांश करने पर यही निर्द्धारित होगा कि उक्त सन्मानकी स्थितिके समान राष्ट्रका उत्कर्षप्रवर्त्तक अपर कोई नहीं है। ऐसी अवस्थामें, संसारमें अत्यन्त हृद्य एवं अभीष्ट जो समागम सो तुम्हें निरन्तर सुखावह हो ऐसा हमलोगोंको जिसने आशीर्वाद दिया, वा आगे देगा, वह गणमात्रा जोड़नेवाला कोई सामान्य व्यक्ति न था, तौ रघुवंशके गीत गा उसकी कीर्तिको जिसने नई अमरता प्रदान की, जिसकी विशाल कल्पनाशक्तिने मेघारूढ़ हो संपूर्ण भारतमें भ्रमण किया, और तदन्तर्गत, पर्वत, नदी आदिके दृश्य, जो सामान्य मनुष्योंके दृष्टिपथमें नहीं आते, फैलादिये, और हज़ारों वर्षके पूर्वकी प्राचीन जनस्थितिकी, कि जो केवल कवि कल्पनाकोही गम्य है, जिसने अपने बुद्धिके मांत्रिक सामर्थ्यसे ऐसी परमोत्कृष्ट प्रतिकृति बना दी कि जिसका रंग अनन्तकाल बीतनेपर भी किंचिदून न होगा—उसी देशभूषण कवीन्द्र एवं शृंगारदीक्षागुरुका वह अनूठा वाग्विलास है। क्या यह बात कोई अल्प स्वल्प और ध्यान में न रखने योग्य है?

यहांलों कालिदासके छोटे बड़े सब ग्रन्थोंका वर्णन हो चुका।* अब आगे इस बातकी आलोचना की जाती है कि कालिदास कौन?

---

* ऊपर जितने ग्रन्थोंका उल्लेख किया गया है उतने सब कालिदासकृत माने जाते हैं; पर इनके सिवाय और भी ऐसे बहुत ग्रन्थ हैं जो कालिदासके नामपर प्रतिष्ठा पाते हैं। मराठीके 'कविचरित्र' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि 'प्रश्नोत्तरमाला' 'असज्जनवर्णन' 'घटकर्परकाव्य' 'हास्यार्णव नाटक' 'कर्पूरमंजरी' 'श्यामलादंडक' 'भोजप्रबन्ध' 'भोजचंपू' और 'रामायण चंपू' ये सब कालिदासकृत हैं। इनके अति

गुणोंके कारण चारों ओर इस प्रकार समादृत किये जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि प्रत्येक जातिमें उसका प्रियतर एक कवि रहताही है। प्राचीन ग्रीक लोगोंको अपने विख्यात कवि होमरका इतना अभिमान था कि उसे हमारा हमारा कह सात नगरके लोग आपसमें लड़ाकरते थे; और उन लोगोंमें परस्परमें संतत लड़ाई चलीही जाती थी कि शत्रुओंने आ संपूर्ण देशको पददलित कर लिया, उस समय उनके देशाभिमानको जागृतकर एकताके साथ देशसे शत्रुओंको हटानेमें उसकी वीर्योत्साह प्रेरक कविताही उपयोगी हुई, और आगे विद्याकलादिकोंकी जो अनूठी उन्नति हुई कि जिसके सामने वर्त्तमानकी उन्नति कहीं कुछ नहीं है, उसका कारण भी बहुधा उसकी कविताही कही जाती है। यह सब बात इतिहासप्रियलोगों पर विदितही है। यह घटना इस बातको निश्चयरूपसे प्रमाणित करती है कि महाकवि देशविभवके आधार स्तंभ होते हैं; और जो ज्ञानदुर्बल लोग निजकी अरसिकताके कारण कविताको केवल कल्पनामय तथा सत्यता

रिक्त कहीं कहीं यह भी पाया जाता है कि 'महापद्माष्टक' 'गंगाष्टक' 'राक्षस काव्य और 'पुष्पबाणविलास' भी कालिदास लिखितही हैं। बाण कविके 'हर्ष चरितमें' कालिदासकृत एक 'सेतुकाव्य' नामक ग्रन्थका उल्लेख पाया जाता है; और यह भी कहा जाता है कि सर्व प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रंथ 'ज्योतिर्विदाभरण' भी कालिदासही का रचाहुआ है। अस्तु; तौ इतने और ग्रन्थ कालिदासके नाम से प्रसिद्धहोनेके कारण वर्त्तमान लेखमें ग्रन्थ पूर्णताके हेतु उनके सम्बन्धसे कुछ तौभी उल्लिखित होना समुचित जान पड़ता है। उक्त ग्रन्थोंमें से 'सेतुकाव्य' की कर्तृताके अतिरिक्त अन्यके लिये विश्वास पात्र प्रमाण नहीं मिलता। और 'भोजप्रबन्ध' और 'घटकर्पर' तौ दूरहीसे पुकारकर कहते हैं कि हम कालिदासकृत नहीं हैं, इसके सिवाय कई ग्रन्थ तो प्राप्तही नहीं हैं। यही कारण है कि उनके विषयमें ऊपर कुछ नहीं लिखा गया। और यह विषय नूतन होनेके कारण इसका अधिक विस्तार स्यात हमारे पाठकोंको भी अभीष्ट न हुआ होता।

रहित मान उसे अवकृत करते हैं, उन्हें उसके यथार्थरूपका तिलभर ज्ञान नहीं हुआ कहना चाहिये । शेक्सपियर कविको अंगरेज लो भी किस प्रकार मानते हैं सो अभी पीछे उल्लिखित होही चुका है । हमारे देशके वैसे जनपूजार्ह कविकुलगुरु कालिदासही हैं; उनके सिवाय दूसरा और नहीं है । जिन्हें संस्कृतकी हवातक नहीं लगी है और जिन्होंने उनका एक श्लोक तक कभी नहीं सुना, वे लोगभी उनके विषयकी चर्चा बड़े प्रेमसे सुनते और करते हैं; इस प्रकारक कथाएं कैसी अप्रयोजक होती हैं आदिके विषयमें भी यदि विचार कि जाय तो तत्क्षण ज्ञात होजायगा कि केवल कालिदासके नामसे हमलोगोंका कैसा प्रेम होगया है और सर्वसाधारण तदर्थ अपने किसप्रकारसे धन्यमानते हैं । पंडित लोगों में उनकी जैसी कुछ प्रतिष्ठा है सो सब विज्ञलोगों पर विदित ही है । किसी कविने कहा है,

पुराकवीनांगणनाप्रसंगेकनिष्ठिकाऽधिष्ठितकालिदासा
अद्यापितत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥ १ ॥

"प्राचीन कालमें एकवार एक पंडित कवियोंकी गणना कर लगा, तब प्रथम उसने कालिदासके नामसे छिंगुली उठाई, औ आगे विचार करने लगा तो दुसरी अंगुली उठानेकेलिये उ वैसा दूसरा कवि उपलब्ध नहीं हुआ । तब उस अंगुलीका नाम ज अनामिका * सो यथार्थ हुआ ।" इस श्लोकमें कालिदासकी अ

* संस्कृतमें हाथकी पांचो अंगुलियोंके नाम पाये जाते हैं । अंगुष्ठ (अंगूठा), तर्जनी (भय प्रदर्शक अंगुली), मध्यमा (बीचकी अंगुली) कनिष्ठिका सबसे छो अंगुली अर्थात् छिंगुनिया), और अनामिका (विना नामकी अंगुली)। इस अंति अंगुलीको ऐसा नाम दिये जानेका कारण स्पष्टही है कि स्थान वा अपर कारण द्वारा उसका बोध कराने योग्य दूसरी संज्ञा उसे दीही नहीं जा सकती ।

तीयता कैसी चतुराईसे वर्णित की है! दूसरी अंगुलीको 'अनामिका' कहते हैं इस छोटीसी बातपर इस सुंदर पद्यमें कैसे गम्भीर अर्थकी रचना की है! कालिदासके गुणोंका चाहे उतना वर्णन किया जाय, तौभी उक्त पद्यांतर्गत मार्मिक अर्थके योगसे मनको जो चमत्कृति भासित होती है सो अपर वर्णनसे स्यातही हो। अब यह बात सच है कि उक्त श्लोकमें अंशतः अत्युक्ति पायीजाती है, पर साथही उससे यह बात स्पष्टरूपसे दृष्टिगत होती है कि इस देशके गलेका तावीज़ होनेकी अकेले कवि कालिदासहीकी योग्यता है। इससे यह अभिप्राय नहीं है कि अपर कविगण मानार्ह नहीं हैं; पर देशप्रियताके हिसाबसे होमर, शेक्सपियर आदिकी मालिकामें गुंफित करनेकी योग्यता केवल कालिदासही की है। कवि अपने २ देश तथा काल के प्रतिबिंब स्वरूप हुआ करते हैं--अर्थात् तत्तत् देश और कालकी अवस्था उनके काव्यमें प्रतिबिंबित हुई दीख पड़ती है। इस अवस्थाका बार बार हेरफेर होते रहता है अतः तत्तत्कालीन कविगण भी जन मान्यतासे बहिष्कृत होते जाते हैं पर यह बात केवल सामान्य कवियोंके विषयमेंही चरितार्थ होती है; कालिदास जैसोंपर उसका अमल नहीं पहुंचता। इसका कारण स्पष्टही है कि उनके विशाल मन द्वारा किसीएक व्यक्ति वा राष्ट्रकाही नहीं किन्तु समस्त मानवजाति के स्वभाव का आकलन हो उनके हृदयोद्गार प्रत्येक व्यक्तिके हृदयको द्रवितकर तल्लीन करडालते हैं; यही कारण है कि उनका अमेटयश देशकालादिद्वारा परिच्छिन्न न हो भगवान् सूर्य्य देवके तेजकीनाईं नित्यता पूर्व्वक उनपर बना रहता है!

भूतपूर्व्व पंडितगणोंके मतानुसार कालिदासके कवित्वगुणोंमें उपमाचातुर्य्य अत्यन्त समुज्ज्वल माना जाता है।

उपमाकालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।

दण्डिनःपदलालित्यं माघेसन्तित्रयोगुणाः ॥

"उपमाकी हथोटी केवल कालिदास, अर्थ गौरवकी भारवी पदलालित्य अर्थात् शब्दोंकी मनोहर रचनाकी दंडी कोही सधी हु थी; पर माघकविको उक्त तीनों गुण प्राप्त थे" उपमान और उपमेय पूर्ण सदृशता चतुराईके साथ प्रदर्शितकरनेकी कालिदासकी शैल अपरकवियोंमें बहुधा लक्षित नहीं होती; पर इसकी अपेक्षा उसके काव्य में एक विशाल गुण और भी पाया जाता है जो अपर कवियोंके काव्य में प्रायः नहीं दीख पड़ता। इसका उल्लेख आगे चलके किया जायगा संप्रति उक्त उपमाओंके कुछ उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं:-

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्याप्रमुखेस्थितासिमेसुमुखि
उपरागांतेशशिनःसमुपगतारोहिणीयोगम् ॥ ❀

शकुंतला ७।

किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतंत्वयावार्द्धकशोभि वल्कलम् । वदप्रदोषेस्फुटचंद्रतारका विभावरीयद्यरुणाय कल्पते ॥

कुमारसंभव ५।

हृष्टापिसाह्रीविजितानसाक्षाद्वाग्भिः सखीनांप्रियमभ्य

❀ पीछे जहां जहां लेखके प्रवाहसे श्लोक आते गये हैं उनके नीचे उनके अनुवाद भी लिख दिये गये हैं। पर वह बात यहांपर नहीं की जा सकती। क्योंकि प्रथम तो विस्तारका भय है, और दूसरे केवल भाषा जाननेवालोंको उक्त पद्योंका रस अनुवादद्वारा प्राप्त होना कठिन तो क्या वरन असंभवही है। अतः जिन २ ग्रन्थों अनवाद भाषामें विद्यमान हैं उन्हें पाठक देखलेवें। इसके सिवाय और उपाय नहीं है

नंदत् । स्थलीनवांभःपृषताभिवृष्टा मयूरकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम् ॥ रघुवंश ७।

संचारिणीदीपशिखेवरात्रौयंयंव्यतीयायपतिंवरासा।
नरेंद्रमार्गाट्टइवप्रपेदे विवर्णभावंससभूमिपालः ॥
रघुवंश ६।

इस अंतिम पद्यकी उपमा कैसी साधी और समर्पक है। हमारे कविकी वर्णन प्रणाली अपने ढंगकी अनूठीही है सो पीछे अनेकबार उल्लिखित होहीचुका है। उसका परिचय निम्नलिखित श्लोकसे प्राप्त होसकता है ॥

ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यंदने दत्तदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टःशरपतनभयाद्भूयसा पूर्व्वकायम् ॥
दर्भैरर्द्धावलीढैःश्रमविवृतमुखभ्रंशिभिःकीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियतिबहुतरंस्तोकमुर्व्यांप्रयाति ॥
शकुंतला १।

यह जो जनश्रुति कर्णगत हुआकरती है कि नानाभांतिके चित्रविचित्र रंगोंद्वारा खींचे हुए चित्रको भी कभी कभी कविशब्द निर्म्मित चित्र लज्जित करते हैं उसका उक्त पद्य परमोत्तम उदाहरण है। उक्त और वक्ष्यमाण श्लोकद्वारा हमारे सहृदय पाठकोंको विश्वास होजायगा कि प्रकृति देवीके परम कुतूहलोत्पादक दृश्योंको मार्मिक दृष्टिसे देखनेकी कालिदासकी नैसर्गिक जिज्ञासा अत्यंत प्रखर थी। अस्तु; आगे:—

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलताम्
यदर्द्धे विच्छिन्नं भवति कृतसंधानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रंतदपि समरेखं नयनयो-
र्न मे दूरे किंचित् क्षणमपि च न पार्श्वे रथजवात्॥

शकुंतला १।

इसे पढ़ यह किसे न भासित होगा कि संप्रतिकी नाईं उस समयभी अग्निरथ थे, स्यात उनकी प्रचण्ड गतिका अनुभव लेकरही कविने यह बात लिखीहो !

तत्प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा
तूणीमुखोद्धृतशरेण विशीर्णपंक्ति॥
श्यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातै-
र्वातेरितोत्पलदलप्रकरैरिवार्द्रैः॥

रघुवंश ६।

यहांलों प्रकृतिके वर्णनका आदर्श अर्थात् नमूना हुआ अब लौकिक प्रसंगके वर्णनको देखिये।

तामुश्रियाराजपरंपरासुप्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः।
सहस्रधात्माऽव्यरुचद्विभक्तःपयोमुचांपंक्तिषुविद्युतेव॥

रघुवंश ६।

इंदीवरश्यामतनुर्नृपोसौत्वंरोचनागौरशरीरयष्टिः।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धयेवांयोगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु॥

रघुवंश ६।

तीसरा प्रकार शृंगाररका। इसके विषयमें तो कुछ कहनाही न चाहिये। जानपड़ताहै कि कामदेवने प्रणयिजनोंके अत्यंत गूढ़ हृद्गत कविको दिखा मानो आत्मरहस्यका उसे उपदेशही कर दिया है :—

यतोयतःषट्चरणोभिवर्त्ततेततस्ततःप्रेरितलोललोचना।
विवर्त्तितभ्रूरियमद्यशिक्षतेभयादकामापिहिदृष्टिविभ्रमम्॥

शकुंतला १।

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौबाहूतदीयावितिमेवितर्कः।
पराजितेनापिकृतौहरस्ययौकंठपाशौमकरध्वजेन॥

कुमारसंभव १।

विवृण्वतीशैलसुतापिभावमंगैःस्फुरद्बालकदम्बकल्पैः।
साचीकृताचारुतरेणतस्थौमुखेनपर्य्यस्तविलोचनेन॥

कुमारसंभव ३।

ततःसुनंदावचनावसानेलज्जांतनूकृत्यनरेंद्रकन्या।
दृष्ट्याप्रसादामलयाकुमारंप्रत्यग्रहीत्संवरणस्रजेव॥

रघुवंश ६।

यह सब वर्णनके चुटकुले हैं। पर कहीं २ यह वर्णन इतना परिपूर्ण रहता है कि वर्णित विषय मानो प्रत्यक्ष सामने आखड़े हो जाते हैं, और उनके मानसिक भावोंकी ओर पाठकोंकी चित्तवृत्ति बलात् आकृष्ट हो तन्मय होजाती है।

ततःप्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठेनिधायदध्मौजलजंकुमारः।
तेनस्वहस्तार्जितमेकवीरःपिबन्यशोमूर्त्तमिवाबभासे॥

रघुवंश ७।

सचापकोटीनिहितैकबाहुःशिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः
ललाटबद्धश्रमवारिबिंदुर्भीतांप्रियामेत्यवचोबभाषे ॥

रघुवंश ७ ।

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकांताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताःप्रत्ययादाश्वसन्त्यः ।
कःसन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
नस्यादन्योप्यहमिव जनो यःपराधीनवृत्तिः ॥

पूर्वमेघः ।

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोःकन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येवफेनैः
शंभोःकेशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥

पूर्व्वमेघः ।

हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शंभुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदिच विचरेत्पादचारेण गौरी ।
भंगीभक्त्या विरचितवपुःस्तंभितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरुमणितटारोहणायाग्रयायी ॥

पूर्व्वमेघः ।

नूनं तस्याःप्रबलरुदितोच्छूननेत्रंप्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।

हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिंदोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्ट कांतेर्बिभर्त्ति ॥

उत्तरमेघः।

अंतिम श्लोकमें यक्षने अपनी विरह शोकार्त्त स्त्रीके मुखका वर्णन कैसा हृदयभेदक किया है! साथही जिस मेघको उसने अपना मित्र माना उसका संबन्ध भी कैसी उत्तमतासे निबाहा है!

देखिये निम्नस्थ पद्योंमें कामिजनोंकी मनश्चेष्टा कैसी मनोहर रीतिसे वर्णित की हैं!—

अनुयास्यन्मुनितनयांसहसाविनयेनवारितप्रसरः।
स्थानादनुच्चलन्नपिगत्वेवपुनःप्रतिनिवृत्तः॥

शकुंतला १।

यदिदंरथसंक्षोभादंगेनाङ्गंनिपीडितम्।
एकंकृतिशरीरेऽस्मिन्शेषमंगं भुवोभरः॥

विक्रमोर्वशी २।

अभिमुखेमयिसंहृतमीक्षणंहसितमन्यनिमित्तकृतोदयम्।
विनयवारितवृत्तिरतस्तयानविवृतोमदनोनचसंवृतः॥

शकुंतला २।

वाचंनमिश्रयतियद्यपिमेवचोभिः
कर्णंददात्यभिमुखंमयिभाषमाणे।
कामंनतिष्ठतिमदाननसंमुखीसा
भूयिष्ठमन्यविषयानतुदृष्टिरस्याः॥ शकुंतला १।

अनुभवन्नवदोलमृतूत्सवंपटुरपिप्रियकंठजिघृक्षया।
अनयदासनरज्जुपरिग्रहेभुजलतांजल(ड)तामबलाजन

रघुवंश ६।

भित्वा सद्यःकिसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिंग्यंते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्व्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति॥

उत्तरमेघः।

दुष्यंतको शापाहत होनेका पुनः स्मरण होतेही शकुंतलाको जो उसने अपकृत किया था तदर्थ उसे नितांत अनुताप हुआ; अब उसके दर्शन दुर्लभ हैं ऐसा समझ उसे अत्यंत विरहदुख हुआ। उस समय वह कहता है;—

स्वप्नोनुमायानुमतिभ्रमोनुक्लिष्टंनुतावत्फलमेवपुण्यम्।
असन्निवृत्त्यैतदतीतमेवमनोरथानामतटप्रपाताः॥

शकुंतला ६।

उसी प्रकारका अज राजाका शोक॥

धृतिरस्तमितारतिश्च्युताविरतंगेयमृतुर्निरुत्सवः।
गतमाभरणप्रयोजनंपरिशून्यंशयनीयमद्यमे॥

रघुवंश ८।

इसी प्रकारसे अन्य घटना संबंधीय हृदयस्थ विचार ऐसे कुतूहलोत्पादक शब्दकलापद्वारा वर्णित किये गये हैं कि उनसे वह रस मानों टपकाही पड़ता है:—

यास्यत्यद्यशकुंतलेतिहृदयंसंस्पृष्टमुत्कंठया।
कंठःस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडंदर्शनम्।
वैक्लव्यंममतावदीदृशमिदंस्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्तेगृहिणःकथंनतनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥

शकुंतला ४।

यह और टिप्पणीस्थ तीन श्लोक इतने करुणारसगर्भित हैं कि वे
ंडित लोगोंको नितांत प्रिय हो 'श्लोक चतुष्टय, के नामसे प्रसिद्ध हैं।*

इतःप्रत्यादेशात्स्वजनमनुगंतुंव्यवसिता
मुहुस्तिष्ठेत्युच्चैर्वदतिगुरुशिष्येगुरुसमे।

---

* वे तीनों श्लोक यह हैं।

शुश्रूषस्वगुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिंसपत्नीजने
भर्त्तुर्विप्रकृतापिरोषणतयामास्मप्रतीपंगमः।
भूयिष्ठंभवदक्षिणापरिजनेभाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवंगृहिणीपदंयुवतयोवामाःकुलस्याधयः॥

अभिजनवतोभर्त्तुःश्लाघ्येस्थितागृहिणीपदे
विभवगुरुभिःकृत्यैस्तस्यप्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात्प्राचीवार्कंप्रसूयचपावनं
ममविरहजांनत्वंवत्सेशुचंगणयिष्यसि॥

भूत्वाचिरायचतुरंतमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथंतनयंनिवेश्य।
भर्त्रातदर्पितकुटुम्बभरेणसार्द्धं
शान्तेकरिष्यसिपदंपुनराश्रमेऽस्मिन्॥

शकुंतला ४।

पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रकरकलुषामर्पितवती
मयिक्रूरेयत्तत्सविषमिवशल्यंदहतिमाम् ॥
शकुंतला ६ ॥

जब दुष्यंतनेभी स्वीकार नहीं किया, और मुनि शिष्य शार्ङ्गरव भी नितांत क्रुद्ध हुआ तब बापुरी शकुंतलाकी ऐसी अचिंत्य अवस्था हुई कि यदि उस समय धरती फटजाती तो वह उसमें समाजाती, पर उतने परभी उसने आंखें डबडबाकर दीनतापूर्व्वक पुनः राजाकी ओर ताका तौभी उसे दया न आयी । आगे यह बात राजाके चित्तमें खटकती रही और उसने विदूषकसे उसका पछताव किया । इस सकरुण घटनाको कविने चतुराईसे कल्पितकर श्लोक में भी उस रसको पूर्ण रूपसे उतार दिया है ।

वही बात अगले श्लोकमें भी:—

पुरंनिषादाधिपतेरिदंतद्यस्मिन्मयामौलिमणिंविहाय ।
जटासुबद्धास्वरुदत्सुमंत्रःकैकेयिकामाःफलितास्तवेति ॥
रघुवंश १३ ।

राजा मनोमन सखेद विचार कर रहा था कि शकुंतलाका विनाकारण परित्याग कर मैं अभागेने अपने हाथों अपना घात करलिया कि इतनेमें उसे धनवृद्ध साहूकारके समाचार मिले । उस संवादके मिलतेही उसका चित्त नितांत खिन्न हो पुनः वह गहरी चिंतामें मग्न हो विचार करनेलगा कि संतति विच्छेदके कारण मेरे पितरोंको अधोगति प्राप्त होगी । उस समयकी उसकी शोकोक्तिको पढ़ ऐसा कौन है कि जिसकी छाती न भरआवे ?

अस्मात्परंवतयथाश्रुतिसंभृतानि
कोनःकुलेनिवपनानिनियच्छतीति ।

नूनंप्रसूतिविकलेनमयाप्रसिक्तं
धौताश्रुशेषमुदकंपितरःपिबन्ति ॥

शकुन्तला ६।

वैसेही

त्वंरक्षसाभीरुयतोऽपनीता
तंमार्गमेताःकृपयालतामे।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवन्त्यः
शाखाभिरावर्ज्जितपल्लवाभिः ॥
मृग्यश्चदर्भांकुरनिर्व्यपेक्षाः
तवागतिज्ञंसमबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्योदिशिदक्षिणस्या
मुत्पक्ष्मराजीनिविलोचनानि ॥
अत्रानुगोदंमृगयानिवृत्तः
तरंगवातेनविनीतखेदः।
रहस्त्वदुत्संगनिशण्णमूर्द्धा
स्मरामिवानीरगृहेषुसुप्तः ॥

रघुवंश १३।

कालिदासकी कवितामें अश्लीलता अर्थात् ग्रामीणता कहीं तनिकभी नहीं पायी जाती। उसकी अनूठी उक्ति शुद्ध एवं मार्मिकतागर्भित रहती हैं। पृथ्वीके समस्त विषयोंको ग्रामीणजन सदा कुत्सित मानाकरते हैं; उन लोगोंकी अप्रशस्त बुद्धिमें यही बात समायी रहती है कि स्त्रियां केवल उपभोग्यवस्तु हैं और उनके विचारकलापभी तदनुसा-

रही रहते हैं। परन्तु यह अनुचित समझ कालिदासके काव्यमें कहीं कुछ दृष्टिगत नहीं होती, जिनके विषयमें विधिका विधान पूर्णतया दृष्टिपथमें आता है, जिनकी अपेक्षा धरतीपर अधिकतर रमणीक और कुछ नहीं है, जिन्हें समसमान प्रमाणसे विधिने बुद्धि प्रदान की है, और जिनका हृदय विश्वनिर्माताने इस अभिप्रायसे विशेष कोमल बनाया है कि वे अपने कर्त्तव्यको भलीभांति समझ बूझकर अपने सहचरोंको विशेषरूपसे सुखद हों—उन्हीं स्त्रियोंकी ओर कालिदास जैसे महाकविके मनका प्रवाह विपरीत कैसे वहसकता है! वह वैसा कदापि न प्रवाहित होगा। उसकी कवितामें स्त्रीजन विषयक समादर और गौरव पदपदपर दृग्गोचर होता है। प्रस्वापनास्त्रद्वारा अपने शत्रुगणोंको जीत अजराजा जब इंदुमतीके निकट आया; तब

सचापकोटीनिहितैकबाहुःशिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः।
ललाटबद्धश्रमवारिबिंदुर्भीतांप्रियामेत्यवचोबभाषे॥
"इतःपरानर्भकहार्य्यशस्त्रान्वैदर्भिपश्यानुमतामयासि।
एवंविधेनाहवचेष्टितेनत्वंप्रार्थ्यसेहस्तगताममैभिः"॥

रघुवंश ७।

यह बीररसपूरित उक्ति उस समयपर कैसी समयोचित बोध होती है! हमारे जिन ग्रंथावलोकनप्रिय पाठकोंने अंगरेजीके उपन्यास पढ़े होंगे उन्हें इस अवसरपर सर वाल्टर स्काट्के अनुपम ग्रंथोंकी विस्मृति कदापि न होगी।

अपने कविका स्त्रीजन विषयक पक्षपात ऐसा दृढ़ पाया जाता है कि, वैसा कुछ विशेष प्रसंग न होनेपर भी वह बीच बीचमें झलकता है। स्वयंवरको जातीबार अजराजा नर्मदा तीरपर डेरा डाले पड़ाथा

कि सहसा उस नदीमेंसे एक प्रचंड हाथी निकला और उसने सब सैन्य तिथर बिथर करदी। उस घटनाके वर्णनमें हमारे कविराट् कहते हैं:-

सञ्छिन्नबंधद्रुतयुग्मशून्यं
भग्नाक्षपर्यस्तरथंक्षणेन।
रामापरित्राणविहस्तयोधं
सेनानिवेशंतुमुलंचकार॥

रघुवंश ५।

इन्दुमतीके सहसा कालकवलित होजानेपर अजराजा शोककातर हो उसके गुणोंका स्मरण करता है:—

गृहिणीसचिवःसखीमिथःप्रियशिष्याललितेकलाविधौ।
करुणाविमुखेनमृत्युनाहरतात्वांवदाकिन्नमेहृतम्॥

रघुवंश ८।

अब इधर आजकल हमलोगोंके जो विचार पाये जाते हैं कि स्त्रीगण सब प्रकारसे निंद्य तथा नीच टहलके योग्यही हैं, सो इसमें और उक्त श्लोकके पूर्व्वार्द्धमें कितना अंतर लक्षित होता है! यहांपर यह बात विशेषरूपसे विचारक्षेत्रमें लेने योग्य है कि कविका उक्त पक्षपात केवल राजस्त्रियोंके विषयमेंही न था बरन स्त्रीमात्रके लिये था।

त्वय्यायत्तंकृषिफलमितिभ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैःपीयमानः।
सद्यःसीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रमारुह्यमालं

किंचित्पश्चाद्व्रजलघुगतिःकिंचिदेवोत्तरेण ॥

पूर्वमेघः ।

उक्त पद्यके प्रथमार्द्धमें किसानोंकी स्त्रियोंके विषयकी स्वभावोक्ति कैसी हृदयग्राहक है !

अब प्रवचनपटुताके कतिपय उत्कृष्ट उदाहरण नीचे प्रदर्शित करते हैं।

अतोयमश्वःकपिलानुसारिणा
पितुस्त्वदीयस्यमयापहारितः ।
अलंप्रयत्नेनतवात्रमानिधाः
पदंपदव्यांसगरस्यसंततेः ॥

रघुवंश ३ ।

उक्त श्लोकमें इन्द्रने थोड़ेसेही पर साथही खूबीदार शब्दोंद्वारा रघुको अपना कैसा आतंक दिखलाया है ! पर वह पराक्रमी राजपुत्र ऐसे आतंकको समझताही क्या था। उसने तत्क्षण उत्तर दिया किः-

ततःप्रहस्यापभयःपुरंदरं
पुनर्बभाषेतुरगस्यरक्षिता ।
गृहाणशस्त्रंयदिसर्गएषते
नखल्वनिर्जित्यरघुंकृतीभवान् ॥

रघुवंश ३ ।

उक्त उत्तर राजपुत्रकी कुलीनता, वीरता तथा उस समयको जैसा कुछ उचित है सो सहृदय पाठक स्वयं जान सकते हैं।

ऊपर वीर रसका नमूना हुआ, अब तद्विरोधी करुण रसकी भी बहार देखिये:—

जानेविसृष्टांप्रणिधानतस्त्वां
मिथ्यापवादक्षुभितेनभर्त्रा।
तन्मात्व्यथिष्ठाविषयान्तरस्थं
प्राप्तासिवैदेहिपितुर्निकेतम् ॥

रघुवंश १४।

व्याधाने क्रौंचका वध किया यह देखतेही जिसके मुंहसे छन्दोमयी वाणी विनिसृत हुई उस आद्य कविकी दयार्द्रता और वाणीकी प्रौढ़ता उक्त श्लोकमें कैसी उत्तमतया झलक रही है!

यहांलों उल्लिखित हुए समस्त समुज्ज्वल गुणोंकोभी लुप्त करनेवाले और अपर कवियोंको अगम्य होनेके कारण केवल कालिदासके आधीनवर्त्ती 'उदात्तरस' वा 'कल्पना विशालता' का* अभी वर्णन होना शेषही है। आजपर्य्यंत सब देशोंमें जो जो कवि श्रेष्ठ हो गये हैं उन सबमें उक्त गुण विद्यमान था, अंगरेजी कविताके वर्णनमें एक स्थानपर ड्रैडन कविका एक सर्व प्रसिद्ध चुटकुला लिखा था उसका हमारे पठनप्रिय पाठकोंको स्मरण बनाही होगा। † उसमें इस गुणके

* इस रसका बोधक शब्द संस्कृत साहित्यमें नहीं है, अतः वह यहांपर नूतन लिखा गया है। इस रसको अंगरेजी में (The sublime) कहते हैं।

† उक्त चुटकुला यह हैः—

Three poets in three distant ages born,
Greece Italy and England did adorn;
The first in loftiness of thought surpassed,
The second in majesty, in both the last
The force of nature could no further go;
To make a third she joined the other two.

ड्रैडनने उक्त सुंदर सुभाषित एक तसवीरके नीचे लिख रखा था। यह उक्त कविका आशुकवित्व और उसकी गुणग्राहकताको स्पष्ट रूपसे प्रदर्शित करता है।

संबंधसे होमर कविको अग्रगण्यता दे मिल्टनकोभी उसीके साथ बैठाला है। ड्रैडन एक शताब्दीके पूर्व जन्म ग्रहणकर अपने कविके काव्यका रसामृत यदि पान करता तौ गेटीकी नाईही तल्लीन हो वह उसे उक्त कवि-मालिकामें परिणत करता; क्योंकि वह समीचीन समालोचक था, और उसे मनकी समावस्था अर्थात् वृथादंभ, मत्सरआदि विकारोंसे मुक्तता अनुकूल थी; यह परमोत्तम गुण कालिदासकी कवितामें जहां तहां उपलब्ध होता है।—

पांड्योयमंसार्पितलम्बहारः
क्लृप्ताङ्गरागोहरिचन्दनेन।
आभातिबालातपरक्तसानुः
सनिर्झरोद्गारइवाद्रिराजः॥

रघुवंश ६।

सरित्समुद्रान्सरसीश्चगत्वा
रक्षःकपीन्द्रैरुपपादितानि।
तस्यापतन्मूर्द्धिजलानिजिष्णो-
र्विंध्यस्यमेघप्रभवाइवापः॥

रघुवंश १४।

अस्त्युत्तरस्यांदिशिदेवतात्मा
हिमालयोनामनगाधिराजः।
पूर्वापरौतोयनिधीवगाह्य
स्थितःपृथिव्याइवमानदण्डः॥

कुमारसंभव १।

प्रजानामेवभूत्यर्थंसताभ्योबलिमग्रहीत्
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्तेहिरसंरविः।

रघुवंश १।

अबोध लोग प्रायः समझा करते हैं कि राजाका कर लेना केवल प्रजाका धनहरण करनाही है। इस निर्मूल भ्रमका निवारण, और प्रजा हितैषिता जो करका यथार्थ रूप है आदिका वर्णन उक्त दृष्टांतद्वारा जैसा उत्कृष्ट लक्षित होता है वैसा अपर उदाहरणद्वारा स्यातही हो!

अजराजपुत्रको विवाहके वस्त्र देनेके अनंतर अन्तःपुरके रक्षक जब उसे इन्दुमतीके निकट विवाहार्थ ले गये तबका वर्णन हमारे कवि लिखते हैं:—

दुकूलवासाःसवधूसमीपं
निन्येविनीतैरवरोधरक्षैः।
वेलासकाशंस्फुटफेनराजि-
र्नवैरुदन्वानिवचन्द्रपादैः॥

रघुवंश ७।

उक्त अनूठे दृष्टांतोंको बिचार कालिदासके सृष्टिज्ञानके विषयमें आलोचना करनेका भार हम अपने सहृदय पाठकोंपरही अर्पित करते हैं।

वधूवर विवाहाग्निकी प्रदक्षिणा करने लगे, उस समयका वर्णन यों लिखा है:—

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानो
रुदर्चिषस्तन्मिथुनंचकाशे।
मेरोरुपान्तेष्विववर्त्तमान
मन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्॥ रघुवंश ७।

धन्य है उक्त कल्पनाकी विशालताको ! क्या यह बात सामान्य कविके चित्तमें कदापि आनेवाली है कि दिवस रात्रिका जोड़ा मेरुके आस पास निरंतर फिरा करता है !

तिस्रस्त्रिलोकीप्रथितेनसार्द्धमजेनमार्गेवसतीरुषित्वा।
तस्मादपावर्त्ततकुंडिनेशःपर्वात्ययेसोमइवोष्णरश्मेः॥

रघुवंश ७।

चन्द्र स्वयं प्रकाशमान नहीं है, और अमावास्याके दिन वह पर्वतकी गुहामें * छिप नहीं रहता किन्तु आकाशमेंही सूर्य्यके नितांत निकट रहता है और कलाहीन हो जाता है, इत्यादि ज्योतिषके रहस्य कालिदासको भलीभांति विदित थे ऐसा उसके ग्रंथोंसे स्पष्ट बोध होता है। उक्त श्लोकमें चन्द्रके दृष्टांतको ले वह तीनरात्रि (वद्य चतुर्दशी, अमावास्या और प्रतिपदा) सूर्यके निकट रहता है और द्वितीयाको उसके पाससे निकल जाता है सो स्पष्टही है।

सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधोविवस्वान्परिवर्तमानः।
पद्मानियस्याग्रसरोरुहाणिप्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः॥

कुमारसंभव १।

---

* यह कल्पना यहूदीलोगोंकी थी। मिल्टन्ने 'सामसन् एगोनिस्टस्' नामक नाटकके आदिमें निजके विषयमें जो करुणोक्ति प्रगट की है उसमें कहा है।

The sun to me is dark,
And silent as the moon,
When she deserts the night,
Hid in her vacant interlunar cave.

हमलोगोंमें ऐसी ग्रामीण कल्पना कदापि नहीं पायी जाती। यह 'अमावास्या (साथरहना)' 'सूर्येन्दुसंगमः' आदि शब्दों द्वाराही प्रमाणित होता है।

उक्त पद्यको पढ़ हिमालयकी गगनभेदी उंचाई किसके मनपर प्रतिबिंबित न होगी! कविका अभिप्राय यह है कि सूर्य क्षितिजके नीचे रहनेपरभी उसके किरणजाल हिमालय शिखरस्थ सरोवरांतर्गत कमलोंको विकासित करते हैं। कमलका विशेषण 'सप्तार्धि' और किरणोंका विशेषण 'ऊर्ध्वमुखैः' ये उक्त अर्थको यथाक्रम पोषकता तथा विशदता प्रदानकरते हैं, अतः उनकी योजना अत्यंत समर्पक है। †

मेघको हिमालय पर्य्यन्त मार्ग कथितकर यक्ष उसे आगे कैलास जानेका मार्ग कथन करता है।

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्यतांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारंभृगुपतियशोवर्त्मयत्क्रौंचरंध्रम्।
तेनोदीचींदिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामःपादोबलिनियमनाभ्युद्यतस्येवविष्णोः॥

पूर्वमेघः।

यक्ष कहता है "भार्गवरामने क्रौंच पर्व्वतमें जो विवर किया है उसमें जानेके हेतु तू प्रथम संकुचित होकर लंबायमान हो ऐसा करनेसे वामन अवतारमें जब भगवान् विष्णुने विराट्रूप धारण किया था उस

---

† उक्त पद्यकी मल्लिनाथने जो टीका लिखी है उससे बोध होता है कि कालिदासने हिमालयकी उन्नतताके विषयमें जो नितांत सरस एवं उदात्तरसका निबंधन किया है वह उनकी समझमें बिलकुल नहीं आया। 'ऊर्ध्वमुखैर्मयूखैः' इसकी व्याख्या करतीवार वह लिखते हैं कि 'अतिमार्त्तण्डमण्डलत्वादग्रभूमेरितिभावः' अर्थात् टीकाकारका अभिप्राय यह है कि हिमालयके अग्रभागस्थ सरोवरोंके कमलोंको सूर्यके करनिकर ऊर्ध्वमुख द्वारा क्यों स्पर्श करते हैं? इसका कारण यह है कि हिमालयके प्रदेश सूर्य्यमंडलकी अपेक्षा अधिक ऊंचे हैं!! जिस हमारे चतुर कविको ज्योतिषादि सब शास्त्रोंका भलीभांति ज्ञान होगासा जानपड़ता है उसका हिमालयके शिखरोंको सबसे ऊंचा मानलेना बड़ा विलक्षण जान पड़ता है!

समय संपूर्ण स्वर्गको व्याप्तकरनेवाला उनका श्याम वर्ण पांव जैसा प्रचंड दिखा था वैसाही तूभी दीखपड़ेगा। " यह उक्ति मनको कैसा चमत्कृतकर आश्चर्यचकित करती है !

उपसंहारमें यह निवेदन है कि कालिदासके काव्यमें जो गुण प्रधान प्रधान जान पड़ते हैं उनका वर्णनकर, उन उन स्थल विशेषोंका भी वर्णन कर दिया गया है कि जहां पाठकोंका मन विशेष रूपसे रममाण होता है। उक्त लेखमें स्यात यह हुआ हो कि बहुतेरे पाठकोंके प्रिय एवं रुचिके श्लोक उसमें न आये हों। पर एतदर्थ हमारे विज्ञ पाठकोंको हमें दोष न देना चाहिये; क्योंकि वह दोष सर्वथा कविकाही है। कैसा ही रत्न परीक्षापटु मनुष्य क्यों न हो, और वह कैसेही विशाल रत्नभंडारमें क्यों न छोड़ दिया जाय, पर यदि उसे थोड़ेसेही रत्नोंका चुनाव करनेकी आज्ञा दी जाय तो वह बिचारा क्या करे। एक मुट्ठीमें जितने रत्न आसकेंगे उतनेही वह वहांसे निकालेगा। हमारे कविके गुण अपार हैं और चित्तको रममाण करनेवाले स्थलभी बहुत हैं। तौ ऐसी अवस्थामें निधिमें चुनावट करना केवल असंभव बात है। तथापि 'रघुवंशादि' काव्योंकी प्रशंसापूरित जो समालोचना पीछे लिखी गयी हैं उनका पाठकोंको पूर्ण परिचय मिले इस अभिप्रायसे उक्त संग्रह उद्धृत किये गये हैं। हमें भरोसा तो है कि उक्त संग्रहमें कालिदासके सरस पद्य प्रायः छूटने न पाये होंगे। संस्कृत कवियोंकी मालिकामें प्रथम जो कालिदास उनका यहांलों संक्षेपसे वर्णन किया गया। अब आगे कालिदासकी योग्य का कवि और नाटकप्रणेता जो भवभूति तद्विषयक लेखका अनुवाद अपने सहृदय पाठकोंको भेंट करनेका उद्योग किया जाता है।

निबन्धमालादर्श ।

पै० ६+५½ सफे १७० कागज़ सफेदगुन्दा
क़ीमत केवल ॥=)

देखिये कि एक मशहूर देसी अखबार इसके निसबत क्या लिखता है।

स्वर्गवासी श्रीयुत पण्डित विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूनकर लिखित निबन्धमाला नामक महाराष्ट्री भाषा की पुस्तक मेंके पांच लेखों का इसमें अनुवाद है पांच लेख ये हैं तथा।

१ विद्वत्व और काव्यत्त्व।
२ समालोचना।
३ अभिमान।
४ सम्पति का उपभोग।
५ थक्तृता।

नागपुरबासी सम्प्रति खंडवानिवासी पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री जीने हिन्दी भाषामें किया है यह पांचही लेख नीति गर्भ और उपदेश पूर्ण हैं। हमारी समाजमें अभी ऐसे ग्रन्थों का एक प्रकार से पूरा अभाव है। उक्त पण्डितजीने इस ग्रन्थ से उसकी पूर्ति की। भाषा सरस और प्राञ्जल है। हमे आशा है कि यदि उनकी इस पुस्तककी लोगोंने चाह की तो अवश्य वह उक्त पुस्तक

के बचेहुये भागों का भी अनुवाद कर नागरी भण्डारका गौरव बढ़ावेंगे। यह पुस्तक लखनऊ मुंशी नवलकिशोर के यन्त्रालय में उत्तम कागज़ और टाइप में छपी है-- यन्त्राध्यक्ष महाशय भी धन्यबाद के भागी हैं जिन्होंने निज व्ययसे इसे छापा है।

श्रीछप्पयरामगीता सटीक।

पै० १०+६½ सफे ३० कागज सफेद गुंदा टाइप उमदा कीमत -)

☞ इसपर एक समाचारपत्रने यह समालोचना की है--

श्री लक्ष्मणजीके प्रश्न पर श्री सच्चिदानन्द भगवान् रामचन्द्र द्वारा वर्णित अध्यात्मरामायणान्तर्गत उत्तरकांड से यह गीता अलग करके पण्डित बेनीरामजी पाठक खण्डवा निवासीने इसे भाषा छप्पय छन्दमें लिखा है। ऊपर संस्कृत श्लोक भी साथही दिये गये हैं। पुस्तक पाठोपयोगी है। सबको इसकी एक २ प्रति लेकर हिन्दूधर्म्म की अनेक उपयोगी बातों से भरी पुस्तक का प्रचार करना परमोचित कार्य्य है। मिलने का पता मुंशीनवलकिशोर का छापाखाना लखनऊ है॥

स्वर्गवासी श्रीयुत परिडत विष्णु कृष्णशास्त्री
चिपलूणकरलिखित

संस्कृत

कविपंच।

(१) कालिदास (२) भवभूति (३) वाणभट्ट
(४) सुबन्धु (५) दंडी

भवभूति।

नागपुरनिवासी परिडतगङ्गाप्रसाद अ-
ग्निहोत्रीद्वारा अनुवादित

प्रथमवार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ाने में प्रकाशित

सन् १९०० ईसवी॥

१. भवभूति के समय और निवास आदि विषयक एक उत्तम लेख आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का 'सरस्वती' प्रयाग भाग ३ संख्या १ पृष्ठ ४ तथा ७१ पर है। जनवरी ५०२

भवभूति।

भवभूतेःसंबंधाद्भूधरभूरेवभारतीभाति।
एतत्कृतकारुण्येकिमन्यथारोदितिग्रावा॥ *

सप्तशती।

पीछे कालिदासके विषयमें लिखतीवार यह कहा था कि उसके विषयमें विश्वासपात्र परिचय अणुमात्र भी नहीं मिलता। और तो क्या पर उसकी असामान्य कीर्त्तिकौमुदी यदि उसके जीवित कालमेंही न प्रकाशित होती, और वह नाटकोंको न लिखता, तौ केवल उसके काव्योंद्वारा आज दिन उसके नामका भी पता न लगता। आनंदका विषयहै कि भवभूतिके विषयमें यह बात सर्वथा चरितार्थ नहीं होती। उसके जीवनकाल तथा वसति स्थानादिका यद्यपि कालिदासकी नाई कहीं कुछ पता नहीं लगता, तथापि निजके कुलवृत्तांतका भावी लोगोंको परिचय मिलनेकी तजबीज उसने कररखी है। उसके तीनों नाटकोंके आदिमें आगे लिखा हुआ वृत्तांत पाया जाता है। दक्षिण देशांतर्गत पद्मपुर नामक नगरीमें डंबरनामके तपोनिष्ठ ब्राह्मण

---

* भवभूतिके संबंधसे विचार कियाजाय तो सरस्वती पर्वतकी कन्या पार्वतीसीगीसी जानपड़ती हैं। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो उसके करुणरसद्वारा पाषाण कर क्योंरोने लगता।

रहा करते थे । उनके कुलमें गोपाल भट्टने जन्म ग्रहण कियाथा । उसका पुत्र नीलकण्ठ भवभूतिका पिता था । भवभूतिकी मांका नाम था जातुकर्णी । आगे अपने कविको भट्ट श्रीकण्ठनाम भी प्राप्त हुआथा । भवभूतिके विषयमें सच्चा वृत्तांत इससे अधिक और नहीं पाया जाता । यों तो लोगोंमें कई प्रकारकी चर्चा होती रहती हैं पर वे सब केवल कल्पनामात्र हैं ।

हमारे यहां प्राचीन संस्कृत कवियोंके विषयमें अनेक दंत कथायें पायी जाती हैं । उनमें भवभूतिके विषयमें यह सुना जाता है कि भोजराजाके आश्रित जो अनेक पंडितगण थे उनमें वह भी था; और कविताके विषयमें उसे कालिदासकी बड़ी स्पर्द्धा थी । यह तो केवल सामान्य बात है पर विशेषरूपसे यहभी सुना जाता है कि भवभूतिके 'उत्तररामचरित' नाटकको पढ़ कालिदास अत्यंत विस्मित हुआ और आनंदमग्न हो उसे माथेपर रख धन्य धन्य कह वह नाचने लगा ।

किमपिकिमपिमंदंमंदमासत्तियोगा
दविरलितकपोलंजल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरंभव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामारात्रिरेवंव्यरंसीत् ।।

भवभूतिके उक्त श्लोकको पढ़ कालिदासने उसे सूचित किया कि अंतिम चरणके 'एवं' पदके स्थानमें 'एव' पद प्रयुक्त किया जाय तो अर्थ विशेष शोभाप्रद होगा । * सुना जाता है कि कालिदासकी

* वह ऐसे कि पूर्व्वोक्त प्रकारसे बोलते २ 'रात्रिमात्र' शेष होगयी पर कहानी शेष नहीं हुई । और पूर्व्व पाठ का अर्थ इतनाही होता था कि इस प्रकार से बोलते २ रात्रि शेष होगयी; इसकी अपेक्षा उक्त अर्थ अधिकतर सरस है सो अर्थमर्मज्ञ पाठक सहजही में जान सकते हैं ।

क्त सूचनाका भवभूतिने स्वीकार किया, और आज दिन उक्त श्लोकमें वही पाठ पाया जाता है। उक्त मनोरंजक कथामें कोई बात असंभवसी नहीं जानपड़ती; क्योंकि उस नाटककी योग्यता ऐसीही है कि 'शकुंतला' नाटक लिखनेवाला भी उसे अपने सीसपर धारणकरे; साथही यहभी लक्षित होता है कि कालिदास जैसाही विशालबुद्धि सम्पन्न था वैसाही वह अत्यन्त निरभिमानी भी था। परन्तु सखेद लिखना पड़ताहै कि भवभूतिके नाटक कवीश्वरोंको अल्प परिश्रम और अल्प अवकाशमें मान्य नहीं हुए;

> नैसर्गिकीसुरभिणःकुसुमस्यसिद्धा
> मूर्ध्निस्थितिर्नचरणैरवताडनानि।

"सुगन्धयुक्त पुष्पोंकी प्रकृतिसुलभ यही योग्यता है कि सब लोग उन्हें मस्तकपर धारण करें, न कि उन्हें पददलित करें" यह सब है सच्चा, पर जगमें इसके विपरीत अनुभव प्राप्त होते हैं। इसी देशमें नहीं, किंतु अनेक देशोंमें ऐसी कई घटनाएं दृष्टिगत हुई हैं कि यथार्थपरीक्षक एवं रसिकके अभावके कारण बहुतेरोंके नैसर्गिक बुद्धिगुण उत्कर्षको प्राप्त न हो वैसेही अप्रसिद्ध बने रहे; और बहुतेरोंको तो मूर्ख एवं अरसिक लोगोंमें सुदुःसह दुःखपूर्वक अपने दिन काटने पड़े। भवभूतिके नाटकोंसे स्पष्ट बोध होता है कि उसकीभी ऐसीही दुर्दशा हुई होगी।

'उत्तर रामचरित' के प्रारम्भमें सूत्रधार कहता है,

> सर्व्वथाव्यवहर्त्तव्ये कुतोह्यवचनीयता।
> यथास्त्रीणांतथावाचां साधुत्वेदुर्जनोजनः॥

"लोगोंमें नामधराई हुए बिना रहना बड़ा कठिन है; तिसमें भी

स्त्रियोंकी पतिव्रतता और वाणीकी निर्दोषता तो लोगोंको नितान्त दु:सह बोध होती हैं । उसमें कुछ न कुछ दोष निकालनेको वे अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं।" वैसेही 'महावीरचरित'के अंतकी चर्चरी (भरतवाक्य-

लोकेनित्यप्रमोदंविदधतुकवयःश्लोकमाप्तप्रसादं।
संख्यावंतोऽपिभूम्नापरकृतिषुमुदंसंप्रधार्य्यप्रयांतु॥

"प्रसादगुणयुक्त अर्थात् अत्यन्त सरल एवं सुबोध काव्य कविगण प्रणीत करें; और बुद्धिमान् पण्डितगण उन्हें सादर पढ़ उनका गुण अङ्गीकृत करें।"

भवभूति अपने समकालीनलोगों द्वारा यदि समादृत कियागया होता और सब लोगोंका वह प्रीतिपात्र होता तौ यह कब सम्भव था कि ऐसी कृतघ्नतापूरित उक्ति उसके मुखसे विनिसृत होतीं ?

यह तो कुछ भी नहीं है; इसकी अपेक्षा नितान्त गंभीर एवं मर्मस्पृक् उक्ति 'मालतीमाधव' नाटकके आदिमें पायी जाती है; वह पाठकोंके हृदयपरभी वैसीही गहरी चोट करती है:—

येनामकेचिदिहनःप्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तुतेकिमपितान्प्रतिनैषयत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्तिममकोऽपिसमानधर्म्मा
कालोह्ययंनिरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

"जो लोग हमारी हँसी कर उसे लोगोंमें फैलाते हैं, उन्हें यह समझलेना चाहिये कि हमने यह परिश्रम उनके लिये कदापि नहीं किया है; हमारे कैसे मनोधर्मका कोई न कोई आगे पीछे कभी अवश्यही उत्पन्न होगा क्योंकि काल अनन्त है और वसुन्धराभी वैसीही विस्तीर्ण है।"

अरसिकलोगोंको यथार्थ योग्यताकी परख न होनेके कारण जिसे उन लोगोंने क्षुद्रवत् माना उस कविमाणिकी भविष्यरूप यथार्थ उक्ति उक्त कैसी उदार एवं सकरुण क्या कहीं भी दृष्टिपथमें आसकती है! कल्पनामय सकरुण घटनाओंका वर्णनकर भवभूति अपने पाठकोंको अनेक स्थानपर द्रवित करता है, परन्तु उक्त श्लोकमें उसकी निजकी सच्ची अवस्थाको पढ़ हृदय जैसा करुणाप्लावित होता है वैसा अपर घटनाके वर्णनसे स्यातही होता हो।

उक्त पद्योंको पढ़ कालिदास और भवभूतिकी समकालीनताके विषयमें हमारे पाठकोंको किंचित् संदेह अवश्यही उत्पन्न होगा; क्योंकि जिसकी अद्वितीयताके कारण अनामिकाका नाम सार्थक हुआ * वह कहां और जिसकी सर्व्व साधारणमें कीर्त्ति होना तो दूर रहा, पर जिसे कविताका रसज्ञ तक न मिलनेके कारण, कालकी अनंतता और धरतीकी विस्तीर्णता पर अपनी आशाको स्थित करना पड़ा, वह बापुरा कवि कहां!

इनके अतिरिक्त और भी ऐसी अनेक बातें हैं जिनकेद्वारा उक्त विवादका प्रायः निर्णय होजाता है। यहांपर उनका सविस्तर उल्लिखित होना आवश्यक जान पड़ता है।

कालिदास और भवभूति समकालीन न थे यह माननेके लिये पहिला बड़ाभारी प्रमाण तो यह है कि पहिलेकी कीर्त्ति प्राचीन कालसेही आबालवृद्धोंको विदित है पर दूसरेकी केवल पंडित लोगोंकोही ज्ञात है। कालिदास अपने जीवित कालमेंही सर्व्वसाधारणका ऐसा जनप्रिय होगया था कि उसकी वस्तुकी चर्चा होतेही सब लोग उसे समादृत करते थे। विक्रमोर्वशी नाटकके आदिमें सूत्रधार सब लोगोंसे इतनीही प्रार्थना करता है कि—

* देखो 'कालिदास' पृष्ठ ३२ की टिप्पणी।

प्रणयिषुदाक्षिण्यवशादथवासद्वस्तुबहुमानात्।
शृणुतजनाअवधानात्क्रियामिमांकालिदासस्य॥

"दर्शकगण! इस नाटकमें जो नायक और नायिका हैं उनके विषयमें समादरपूर्व्वक वा यह सुभाषित कालिदासकी है यह जानकर हमारे अभिनयकी ओर दत्तचित्त हूजिये।"

उक्त सूत्रधारोक्तिद्वारा उक्त दोनों कवियोंका महदंतर सहजही में लक्षित होता है। जब कालिदास तत्कालीन लोगोंको इतना वन्द्य था तब जिस कविकी कृतिको वह स्वयं समादृत करता था वह कवि लोगों को किस प्रकार बहुमान्य होना चाहिये था। पर यह जनप्रियताका सुख विचारे भवभूतिके नसीबमें न बदा था। यह बात उसके नाटकों द्वारा स्पष्टरूपसे दृष्टिगत होती है।

भवभूतिको राजाश्रय प्राप्त था कहना युक्तिसंगत नहीं बोध होता, क्योंकि यदि वैसा होता तो उसके तीनों नाटकोंका प्रयोग कालप्रियनाथकी यात्राके प्रसंगपरही क्यों किया जाता। * कालिदासके किसी नाटकके आदिमें रंगभूमिके स्थलका उल्लेख नहीं पाया जाता, इससे यही अनुमित होता है कि उनका अभिनय राज मंदिरादिमें ही होता होगा। पर वह सौभाग्य भवभूतिको कधीभी न प्राप्तहोनेके कारण जान पड़ता है उसने अपने नाटक यात्रादि जनसमाजोंके प्रसंगपरही अभिनीत कराये हों। और इसकी अपेक्षा अधिक विश्वासपात्र प्रमाण स्वयं उसके नाटकमें ही पायाजाता है। कालिदासके समस्त ग्रंथोंमें संस्कृत भाषाका शुद्धस्वरूप दृष्टिगत होता है। वाक्यों की रचना सरल, उनमें कृत्रिमता लेशमात्रको नहीं पायी जाती; वैसेही शब्दजालभी सुबोध और समास थोड़े थोड़े शब्दोंकेही पायेजाते हैं। कालिदासके

* उक्त स्थलका उल्लेख इस कविके तीनों नाटकों के आदिमें पाया जाता है।

सब ग्रंथोंमें खोज करनेसे चार पांचसे अधिक पदोंके समास बहुतही थोड़े मिलेंगे। इसके उदाहरण स्वरूपमें 'मेघदूतका' नामोल्लेख किया जा सकता है। वह पूरा ग्रंथ मंदाक्रांता कैसे दीर्घवृत्तमें प्रणीत किया जानेपरभी उसमें समास प्रायः छोटे छोटेही हैं। पर भाषाकी यह प्रणाली भवभूतिके नाटकोंमें नहीं दीख पड़ती। बाण, श्रीहर्षादि तदनंतरके कवियोंने लंबे लंबे समासोंकी जो कृत्रिम रचना धीरे धीरे प्रचलित की वही उनमें जहां तहां दीख पड़ती है। उसी प्रकारसे 'मालती माधव' नाटकमें बौद्धमतकी स्त्रियोंको प्रधानपात्र बना, कापालादि घोर पंथानुयायी लोगोंका भी संबंध लाया गया है। पर ऐसों कैसा संबंध कालिदासके नाटकमें यत्किंचित् भी नहीं पाया जाता। 'मृच्छकटिक' 'प्रबोधचन्द्रोदय' 'नागानन्द' आदि नाटकों और 'दशकुमारचरित' प्रभृति ग्रंथों में मात्र उस समयके लोगोंकी दशाका कुछ स्वरूप लक्षित होता। इतावता भवभूतिको कालिदासके समयका माननेकी अपेक्षा, उक्त ग्रन्थ जिससमय लिखे गये उसी लागपर वह था मानना अधिक सयुक्तिक जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त भवभूतिके नाटकोंमें कालिदासके ग्रंथोंको अनुलक्षितकर लिखेहुए और उनमें से लियेहुए कुछ शब्दभी पाये जाते हैं। 'मालतीमाधव' के दूसरे अंकमें :—

"कामंदकी। अयि, सरले! किमत्रमया भगवत्या वश्यक्यंकर्तुम्? प्रभवति प्रायः कुमारिकाणां जनयिता दैवंच। यच्चकिल कौशिकी शकुन्तला दुष्यन्तमप्सराः पुरूरवसं चकमे इत्याख्यानविद आचक्षते। वासवदत्ताच राज्ञे संजयाय पित्राप्रदत्तमात्मानमुदयनाय प्रायच्छदित्यादि। तदपि साहसक्यमित्यनुपदेष्टव्यकल्पं सर्वथा।"

उक्त संवाद में 'शकुन्तला' और 'विक्रमोर्वशी' नाटकोंका तथा 'मेघदूतादि' ग्रंथ प्रसिद्ध वासवदत्ता और उदयन राजाका संबंध लाया गया है सो स्पष्टही है।

उक्त ग्रंथके नवम अंकमें माधव मालतीके विरहसे कातरहुआ मदर्शित किया गया है। इस अंकके विषयमें कई स्थानोंपर ऐसा भासित होता है कि मानो कविने 'मेघदूत' और 'विक्रमोर्वशी' के चौथे अंकको अनुकृतकर इसे लिखा हो।

'महावीरचरित'के सातवें अंकमें :—

विभीषण:। देव.

एतेतेसुरसिंधुधौतदृषद:कर्पूरखंडोज्ज्वला:
पादाजर्जरभूर्जवल्कलभृतो"गौरीगुरो:पावना:"। ⊛

उसी अंकमें पुन:

'सुग्रीव: * *

उत्खातस्त्रिभुवनकंटकोऽतिदृप्य
दोर्दंडांचितमहिमाप्ययंनिकार:।
देव्याश्चप्रतिशमितस्तथात्रसंधा
निर्व्यूढाप्रगुणविभीषणाभिषेकात्॥

मननपूर्व्वक यदि आलोचना की जाय तो हम समझते हैं कि उक्त कैसी सदृशता और भी अन्यस्थलोंपर उपलब्ध होगी।

⊛ कार्य्यासैकतलीनहंसमिथुनास्रोतोवहामालिनी।
पादास्तामभितोनिषण्णहरिणा "गौरीगुरो:पावना:"

शकुंतला ६।

* * उत्खातलोकत्रयकंटकेऽपि
सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वांप्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तौ
अस्त्येवमन्युर्भरताग्रजेमे॥ रघुवंश १४।

उक्त विवाद हमारे पाठकोंको बहुधा अभीष्ट न होगा, किंतु पूर्वोल्लिखित मनोहर आख्यायिकाके विरोधी प्रमाणोंको, जो ऊपर प्रदर्शित किये गये हैं, पढ़ वे नितान्त हताश होजायँगे। क्या किया जाय इसके-लिये कोई उपाय नहीं है। इस संसारमें सत्यता और मनोहरताकी एकत्र स्थितिका नित्य विधान नहीं पाया जाता; अतः जिसे केवल सत्यताकाही अनुधावन करना हो उसे अनेक प्रसंगों पर साहसपूर्व्वक अपने परम प्रिय मत और नैसर्गिक वृत्तियोंको भी सत्यप्रीत्यर्थ जलांजलि देनी पड़ती है। अब कोई यह प्रश्न करे कि, उक्त बात सच्ची कैसी दिखनेपर भी उसे नई गढ़ंत कैसे कह सकते हैं! वा वह वैसी ही मानली जाय तो उसके रचयिताका क्या अभिप्राय मानना चाहिये। इसके उत्तरमें हम इतनाही कहते हैं कि यह बात केवल कालिदास और भवभूतिके विषयमेंही वा हमारे देशके विषयमेंही नहीं पायी जाती, तौ मनुष्यके मनकी सर्वत्र ऐसीही प्रवृत्ति दीख पड़ती है कि जहां कोई दो अतिविख्यात मनुष्य मिले कि किसी न किसी प्रकारसे उनका मेल मिला दिया जाता है। दैवात् यदि यह लोग बहुत पुराने रहे तो उनका गुत्थमगुत्था करदेनेवालोंकी कल्पनाशक्तिको बहुत कुछ अनुकूलता प्राप्त हो जाती है। मनुष्यकी इस प्रकृतिसुलभ मनोवृत्तिका वर्णन सब देशोंकी आद्यविद्याके कथासमूहों में (जिन्हें अंगरेज़ी में Mythology कहते हैं) बहुत उत्तम प्रकारका पाया जाता है। वह इस प्रकार कि जब मनुष्य अज्ञान अवस्थामें रहता है और क्रमशः उसकी ईश्वरप्रदत्त बुद्धिका विकास होने लगता है, तब चन्द्र सूर्य्यादि आकाशके ज्योतिर्मय पदार्थ, वैसेही समुद्र, पर्वत और नदी आदिकी ओर देखकर वह आश्चर्य्यचकित होता है, और उसके चित्तमें यह पूज्यभाव आविर्भूत होता है कि यह सब मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ देवतागण हैं। अनंतर वह अपने समस्त धर्म्म उनके विषयमें कल्पितकर उनके पर-

इधर संबंध जोड़ने लगता है । इस प्रकारसे एक बार आरंभ हो गया कि पितृपुत्रपरंपराद्वारा उन्हीं कथाओंका विस्तार हो पूर्वोक्त कथा समूह बनजाता है । हिंदू, ग्रीक और रोमनप्रभृति जातियोंके प्राचीन कथासमूहोंके विषय प्रकृतिके भव्य एवं रमणीक पदार्थही पाये जाते हैं, और उनकी परस्परकी तुलना आधुनिक भाषाभिज्ञोंकेलिये बड़ागंभीर एवं रमणीक विषय हुआ है । सारांश मनुष्योंमें यह मनोधर्म निसर्गतः बलिष्ठ रहता है और नामी ग्रामी लोगोंके विषयमें सर्व साधारणमें जिन बातोंकी चर्चा हुआ करती हैं उनका प्रायः कारण यही कहा जाता है । 'दशकुमारचरित' संज्ञक ग्रंथके कर्त्ता दंडीके, कि जिसका नाम पीछे एक श्लोकमें आचुका है, और कालिदासके विषयमें भी एक ऐसीही बात कही सुनी जाती है; पर वह भी पूर्वोक्त कारणोंद्वारा केवल असंभवही नहीं निश्चित होती किंतु अप्रयोजनीय एवं ग्रामीण प्रमाणित होती है । * अब एक बात देशान्तरकी उदाहृत करते हैं । ग्रीकलोगोंके सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता सोलन् और प्राचीन लिडिया देशके अमित धनसंपन्न एवं परम प्रभावशाली राजा क्रीसस्के विषयमें इतिहासमें एक अद्भुत बात प्रसिद्ध है । पर आधुनिक इतिहासलेखकगण यह कहते हैं कि शताब्दीके हिसाबसे इस बातका मेल ठीक २ नहीं मिलता, इसी बातको प्रधानता दे उसके सर्व्वप्रसिद्ध होनेपर भी वे लोग उसे प्रमाणित नहीं मानते । इस प्रकारसे इन सब बातोंके विषयमें यथावत् मीमांसा करती बार संस्कृत भाषाके उभय कवि चूडामणिके विषयमें उनकी कल्पनासृष्टि चतुर जातिमें उक्त चित्तबेधक आख्यायिकापरंपरासे चली आयी है तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ?

---

* इसका उल्लेख आगे दंडीके निबंधमें किया जायगा ।

अब विषय वर्णनानुरोधके कारण यहांपर एक परम महत्त्वकी बातका उल्लेख आवश्यक जान पड़ता है। वह यह कि, इस प्रकारकी आख्यायिका वास्तवमें रहती तो असत्यही हैं पर असत्यताके कारण वे त्याज्य नहीं होसकतीं; बरन विद्वानोंको उचित है कि वे आदरपूर्व्वक उनका संग्रह करें। क्योंकि प्रथम तो वे मनरंजनकरनेवाली रहती हैं; और दूसरे उनके अयथार्थ होनेपर भी उनमें यथार्थताका बहुतांश विद्यमान रहता है। वह इस रूपसे कि उनमें सर्व्वसाधारणका मत संक्षिप्त रूपसे पाया जाता है। उक्त भवभूति विषयक बात यदि सत्य होती तो आजदिन उसकी योग्यता इतनी बड़ी न मानी जाती, पर वह निरी झूठ है इससे आगेके लोगोंमें उसकी कैसी चाह हुई होगी सो सहजहीमें अनुमित हो सकता है। यदि वह कालिदासके समयमें ही होता, तो जिन लोगोंने 'शकुंतला' और 'विक्रमोर्वशी' की प्रशंसा की, उन्हीं लोगोंने 'उत्तररामचरित' और 'मालतीमाधव' की भी प्रशंसा की होती इसमें कुछ विशेषता न थी। पर उस कविकेशरीकी गर्जना शेष होजाने पर जब चारों ओर सन्नाटा छा गया, और लोगोंको जान पड़ने लगा कि अब पुन: वैसी गर्जनाका होना कठिन है तब पहिलेका स्मरण दिलानेवाले सुतरां उससे भी कहीं प्रचंड दूसरेकी गंभीर गर्जना कर्णकुहरमें प्रविष्ट होने लगी, यह बात वास्तवमें अधिक चमत्कारजनक जान पड़ती है।

कदाचित् बहुतेरे लोग यह शंका उपस्थित करनेमें तनिक भी न हिचकेंगे कि ऊपर कविने निजका जो परिचय दिया है और अपने समकालीनलोगोंका अधिक्षेप किया है वह उसे आत्मश्लाघाके दोषसे दूषित करता है। पर नेक विचारांश करनेपर तत्क्षण ज्ञात हो जायगा कि उक्त विचार सर्व्वथा यथार्थ नहीं है। कवि आदिकोंकी सुप्रसिद्धि प्राय: उनके परलोकयात्री होने पर ही हुआ करती है; क्योंकि उनके जी-

वितकालमें उनके उत्कर्षको देख जलनेवाले मत्सरीलोग उनकी ख्यातिके बाधक होजाते हैं;सारज्ञ एवं निर्मल बुद्धिवालेलोग बहुत थोड़े रहनेके कारण वे दुष्टोंका कुछ नहीं करसकते। ऐसी अवस्थामें उनका यथार्थ वृत्तांत लिख रखनेवाला उन्हें कौन मिल सकता है? यही जान बूझकर कई नामीलोगोंने आत्मचरित्र स्वयं लिपिबद्ध कर रखे हैं,उसी प्रकारसे यदि और लोग भी कर रखते तो आज दिन जगको कैसा अ-मूल्यलाभ प्राप्त होता! मानलो कि संप्रति इंग्लैंड देशमें यदि किसीको शेक्सपियर कविका स्वरचित सविस्तर चरित मिलजाय तो उसे लेने केलिये सब देशोंसे मांगकी कैसी धूम मचेगी! तात्पर्य यह प्रचार यदि पूर्वसे प्रचलित हो जाता तो उसकेद्वारा एक और भी अनर्थ बहुत कुछ दूर होजाता। वह यह कि ग्रंन्थोंमें क्षेपक और अन्य लोगोंके विचार चोराकर अपने कहनेको जैसा आज क्षुद्र ग्रंथलेखकोंको अवसर मि-लगया है वैसा उन्हें कदापि न मिलने पाता। इससे यही प्रतिपादित हुआ दीख पड़ेगा कि महान् ग्रंथकारोंके आत्मविषयक लेख दूषणार्ह नहीं हैं किंतु वे परमोपयोगी हैं। अपर संस्कृतके कवि और नाटक ले-खकोंके नाम प्राय: उनके २ ग्रंथोंमें लिखेहुए पाये जाते हैं। 'मुद्राराक्षस' 'मृच्छकटिक' आदि नाटकों और कादंबरी प्रभृति काव्योंके आदि में उनके रचयिताओंका आत्मपरिचय बहुत कुछ पाया जाता है। अत: एतदर्थ भवभूतिको दूषित करना सर्वथा अयोग्य है। * अब यह बात सच है कि कालिदासका नाम उसके नाटकोंको छोड़ उसके अन्य ग्रंथोंमेंसे किसी ग्रंथमें भी नहीं पाया जाता। और नाटकोंमें भी जो उ-सने अपना नाम लिखा है सो केवल नाटक प्रणेतृगणोंकी प्रथानुसारही

---

* इस विषयकी अधिक विवेचना देखनी हो तो मुन्शी नवलकिशोर सी, आई, ई के मुद्रणालय लखनऊसे मदनुवादित 'निबंधमालादर्श' को मंगाकर उसके 'अभिमान' संज्ञक लेखको पढ़िये गा।

खासा जान पड़ता है। पर कालिदासकी तो बातही कुछ निराली थी। उसके काव्योंमें उसके निसर्गजात जो गुण झलकते हैं उनमें कुलीनता यथार्थमें प्रमुख है; पर उसकी भणित प्रथमहीसे सर्व्वमान्य होजानेके कारण शोभाको प्राप्त हो गयी, यही कारण है कि स्वयं स्वगुण वर्णनका अश्लाघ्य कर्म उसे नहीं भोगना पड़ा। भवभूतिकी अवस्था वैसी अनुकूल न होनेके कारण स्वयं निजके गुण लिखनेके अतिरिक्त उसे उपायांतर हीन था। वैसा यदि वह न करता तो उसका नाम लुप्त हो उसके ग्रंथ लुप्त होजानेका भय था;इसी भयके कारण कहीं समूचे श्लोक कहीं एक २ दो २ चरण, और कहीं केवल शब्दही उसने तीनों नाटकोंमें एकसे प्रयुक्त किये हैं ऐसा अनुमान होता है। सारांश इन दोनों कवियोंकी तुलना करना ठीक न होगा। तौभी इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि जनमान्यताके संबंधसे गुणवान् लोगोंकी जो अत्यंत भिन्न २ दो अवस्था होती हैं उनके उक्त उभय कवि उत्कृष्ट उदाहरण हैं; और दोनोंभी विशेषतासंपन्न होनेके कारण चित्त में धारण करने योग्य हैं। अपनी सहज लीलाओंद्वारा बसहुए युवा पुरुषोंको देख सुंदर कुमारिकाओंका सलज्ज नीचे निहारना जैसे चित्तको मोहित करलेता है; वैसेही अर्भकोंका आत्मविषयक अनादर देख उनकी ओरको तत्कृत तिरस्कारका कटाक्षपात क्या मनोहर न होगा ?

भवभूतिके नामसे केवल 'मालतीमाधव' 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित' यही तीन नाटक प्रसिद्ध हैं। यही तीन उसने लिखे, वा जितने लिखे उनमेंसे यही तीन अवशिष्ट रहे; इसका इतः पर निश्चय होना प्राय: असंभवही है। पर इसमें तो अणुमात्र भी संदेह नहीं है कि यह तीनों उसीके लिखे हुए हैं। क्योंकि प्रथम तो उन सबमें उसका नाम पाया जाता है और दूसरे पीछे अभी कही चुके हैं कि

उन सबमें कुछ न कुछ श्लोकादि एकसे उपलब्ध होते हैं। यहांपर यह बात भी सहजही उत्पन्न हो सकती है कि भवभूतिने कालिदास की नाईं काव्य भी लिखे हैं वा नहीं। पर इसका भी निर्णय करना प्रायः ऊपर कैसाही दुःसाध्य है। तौ भी 'मालतीमाधव' नाटक के प्रारंभमें सूत्रधारके भाषणमें 'भवभूतिनामा कविर्निसर्गसौहृदेन भरतेषु वर्त्तमानः' (भवभूति नामका कवि जिसका कि हम नाटक लेखकोंसे निसर्गजात स्नेह पाया जाता है) यह जो प्रयुक्त किया गया है सो इसका यदि कुछ विशेष अभिप्राय हो तौ हमारे कविकी नाटकों की ओर प्राकृतिक प्रवृत्ति थी ऐसा माना जाकर उक्त बातका अंशतः निबटेरा हो सकता है। वैसेही पहिले तो उसके नाटकोंकी सर्वथा अवज्ञाही हुई पर आगे कुछ कालके अनंतर वेही सर्वोपरि निश्चित किये गये,इससे भी स्यात यह अनुमान हो सकता है कि भवभूतिका चित्त स्वभावतः नाटकोंकी ओरही आकृष्ट था, और उसकी समस्त बुद्धि इसी ओर व्यय हुईसी दीख पड़ती है। अस्तु; तो अंतमें यह बात संशयात्मकही रहती है।

"मालतीमाधव" नाटकको अपर दोनों नाटकोंकी नाईं पुराणांतर्गत कथाका आधार नहीं है; उसकी आख्यायिका केवल कवि कल्पनाकी सृष्टि है। आगे उसका सारांश लिखा जाता है। भूरिवसु और देवरात नामके दो मित्र थे। गुरुगृहपर जब वे विद्या पढ़ते थे तब उनका यह विचार हुआ कि यदि अपनेको लड़का लड़की हुई तो अपनलोग उन परस्परका विवाह करेंगे। आगे कुछ कालके अनंतर भूरिवसु पद्मावतीके राजाका प्रधान मंत्री नियुक्त किया गया। और देवरात को भी विदर्भ देशके अधिपतिने अपने मुख्य मंत्रीका पद प्रदान किया। दैवात् उनकी मनोकामना भी पूर्ण हुई; अर्थात भूरिवसुके यहां मालती नामकी कन्याने जन्म ग्रहण किया और देवरातको

माधवनामका पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। यही दोनों वर्त्तमान नाटकके नायिका और नायक हैं। दोनोंके वयस्थ होने पर पूर्व्व संकल्पानुसार उन दोनोंका विवाह होनेवाला था; पर बीचहीमें एक अचिंत्य आपत्ति आ पड़ी। वह यह थी कि पद्मावतीके राजाका नंदन नामका एक प्यारा नर्मसचिव था; उसने राजाकेद्वारा मालतीकी सगाईकेलिये उसके बापसे बातचीत लगायी। इस बातचीतकी गंभीर चिंताके कारण भूरिवसु किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। पर ऐसे संकटके समयपर उसकी पूर्वकी गुरुबहिन कामंदकीने, कि जिसके सामने वे दोनों अपने अपत्योद्वाहकेलिये वचनबद्ध हुए थे, उनके उक्त कार्य्यका भार अपने सिर ले, बड़ी चतुराईसे उसे संपादित किया। उसने अपना अंग बचाकर अपनी दासीद्वारा मालतीमाधवमें प्रेम अंकुरित करा दिया। फिर एकदिन योंहीं मालतीकी भेंटके ओखेसे जा बातचीत करते करते वहां माधवकी चर्चा छेड़ प्रसंगवशात् उसके गुणोंका वर्णनकर उसका कुलवृत्तांत भी उसे सूचित कर दिया। उस वृत्तांत को सुन, माधवकी कुलीनताके विषयमें मालतीको जो संदेह था सो दूर होगया, और तद्विषयक उसका पूर्व्वानुराग सुदृढ़ हो गया। और दूसरे वर नन्दनके विषयमें द्वेष उत्पन्न हो उसे शंका हो गयी कि मेरे पिताकी दृष्टि केवल निजके स्वार्थ परही है। आगे उसे ऐसे कुछ ढंग दीख पड़ने लगे कि नंदनके साथ उसका विवाह हो माधवका प्रेम उसे जन्मभर हृदयशल्य होगा। माधवको भी उक्त आशाभंगके कारण सब जगत् शून्यसा भासित होनेलगा। इधर दोनों ओरसे विवाहकी सब तैयारी हुई; पर इतनेमें चामुंडोपासक कपालकुंडला, अपने गुरु अघोरघंटकी मंत्रसिद्धिकेलिये बलिप्रदानार्थ, मालतीको आकाश मार्गसे उठा ले गयी। वह अपने महलमें अटारीपर सोयी थी, और अब जागृत होनेपर उसने अपनेको बलिप्रदानार्थ सिद्ध की हुई पाया।

अपनी उक्त अवस्थाको सहसा देख वह बड़े जोरसे चिल्लाकर रोने लगी। माधव निराश एवं उदासीन हो मरघटामें फिर रहा था सो उसका वह रोना उसने सुना। उस करुणोत्पादक रुदनध्वनिको सुन माधव शीघ्रही चामुंडाके मंदिरमें जा पहुंचा, और उसने अघोरघंटका बध कर मालतीको प्राणदान दिया। इतनेमें उसके पिताके यहां भी उसके अदृष्ट होजानेकी बात विदित हो, लोग चारों ओर उसे ढूंढ़नेकेलिये दौड़ रहे थे। उसके उक्त मंदिरमें प्राप्त होनेपर फिर विवाहकी तैयारी होनेलगी। कामंदकीने माधव और उसके मित्र मकरंदको ग्राम देवताके मंदिरमें छिपाकर उन्हें कह रखा था कि मैं देवीके दर्शनोंकेलिये मालतीको वहां लाऊंगी। तदनुसार बड़े समारोहके साथ मालती वहां लायी गयी। मंदिरमें जा मालती अपनी प्रियसखी लवंगिकाके गले लग माधवके गुण और उपकारका स्मरणकर रोने लगी; और प्राणविसर्जनार्थ अनुमोदन देनेकेलिये उसकी प्रार्थनाकर वह उसके पाँओपर गिर पड़ी। इतनेमें लवंगिकाके इंगित करने पर माधव उसके स्थानमें आखड़ा हो गया। मालतीके नेत्र साश्रुहोनेके कारण उसे किसी प्रकारका संदेह नहीं हुआ। अंतमें माधवको लवंगिकाही जान वह उसके गले लपट गयी, और उसने अपने मनकी सब बात उसे सुना दी, और माधवकी गुहीहुई इस बकुलमालाको मालतीके जीवनकी सहदानी जान अपने हियेसे लगारखनेकी प्रार्थनाकर उसके गलेमें उसने वह माला पहिरा दी। पर ऊपर देखतेही माधवको पहचान सभय लज्जित हो वह पीछे हट गयी। इतनेमें कामंदकी भीतर आयी और उसने उन दोनोंको गुप्तमार्गद्वारा अपने मठपर जानेकी अनुमति दी। वहांपर उसने अवलोकिता नामकी अपनी चेलीद्वारा विवाहकी सब सामग्री पूर्वहीसे सुसज्जित करा रखी थी। इधर मालतीके सब कपड़े और अलंकार मकरंदको पहिरा कामंदकी उसे भूरिवसुके यहां ले गयी, और किसी

को तनिकभी संदेह न होने देते उसका नंदनके साथ विवाह करा-
दिया। मदयन्तिका नामक नंदनकी एक बहिन थी, वह प्रथम ही
से मकरन्दपर आसक्त हो गयी थी, और जबसे उसने उसे व्याघ्रके
आक्रमणसे बचाया था तबसे तो वह उसके प्रेमकी भिखारिन बन गयी
थी। उसकी और मकरन्दकी भेंटभी इसी प्रसंगपर उसने बड़ी दक्षतासे
करा दी। अनंतर पूर्वसंकेतानुसार वे दोनों और लवंगिका तथा कामं-
दकीकी दूसरी चेली बुद्धिरक्षिता ऐसे यह चारो जने, आधीरातको
जब वहां चारों ओर सन्नाटा छा गया, गुप्तभावसे मठकी ओर चले
गये। पर मार्गमें नगररक्षकोंने उनके जानेमें बाधा उपस्थित की;
तब मकरन्दने उन तीनों स्त्रियोंको माधवके किंकर कलहंसके साथ
माधवके निकट भेज दिया और आप अकेला उनसे लड़ता रहा।
आगे माधवने जब वह समाचार सुना तत्क्षण वह भी अपने मित्रकी
सहायताके लिये आ गया। उन दोनोंने नगररक्षक अधिक होनेपरभी
उन्हें पराजित किया। उनके उस पराक्रमको देख राजाने उन्हें बहु-
मानपूर्वक बोलाया, और उनका सब वृत्तान्त सुन, उनकी इच्छानुसार
सब कार्य करना स्वीकृत किया। इस प्रकारसे राजसत्कार प्राप्तकर
वे दोनों मित्र कामन्दकीके मठपर गये—पर वहां जा उन लोगोंने
मालतीको न पाया। क्योंकि लवंगिकादि उसकी सखियोंको उस-
से किंचित् दूर देख कपालकुण्डला उसे अचानचक उठा ले गयी थी;
और माधवसे बदलालेनेके अभिप्रायसे वह उसका बध करनेकोही
थी कि उतनेमें, कामन्दकीकी एक पुरानी चेली सौदामिनीने, कि
जो उसी श्रीपर्वतपर तप कर रही थी, उसके प्राणोंकी रक्षा की। इधर
माधव उसके विरहदुखसे कातर हो अपने मित्रको साथ ले उसके
शोधार्थ बनोबन भ्रमण करनेलगा। फिरते फिरते विरहव्याकुल
हो वह मूर्च्छित हो गया, मित्रकी उक्त दुखद अवस्थाको देख एक

पर्वतकी चोटीपरसे कूदकर प्राणविसर्जन करनेके लिये मकरंद प्रस्तुत हुआही था कि इतनेमें सौदामिनी वहां योगबलद्वारा प्रादुर्भूत हुई और मालतीके जीवित रहनेकी पहिचान जो बकुलपुष्पमाला थी उसे दिखाकर उसने उसकी सांत्वना की; इतने अवसरमें शीतल वायुके स्पर्शसे माधवकी मूर्च्छाभी टूट गयी, मूर्च्छाके टूटतेही उन्माद अवस्थाके कारण कृतांजलि हो वह वायुकी प्रार्थना करनेलगा। सौदामिनीने यह अवसर उचित जान वह बकुलपुष्पमाला उसकी अंजलीमें छोड़ दी । माधवने उसे तुरंतही पहिचान लिया, और तद्द्वारा उसे धैर्य प्राप्त हुआ। आगे सौदामिनीने प्रगट होकर उन दोनों को मालतीके समाचार सुनाये। अंतमें कामंदकी, भूरिवसु और लवंगिकादि मालतीकी सखियां, मालतीकी कहीं टोह न लगनेके कारण नितांत दुखित हो गयी थीं, उनकोभी सौदामिनीने आश्वासन दिया और मालतीकी भेंट करायी। तदनंतर आनंदमग्न हो सब लोगोंने बधूवरोंका विवाहोत्सव मनाया।

यही इस नाटकका संविधानक अर्थात् कहानी है। है तो यह बहुत लंबी चौड़ी पर साथही सरलभी है । बहुत घुमाने फिरानेसे जैसे किसी विषयको जटिलता प्राप्त हो जाती है सो बात इसकी नहीं है। इसकी घटना ऐसी चमत्कृतिजनक एवं चित्रविचित्र होने परभी इसके कथासूत्रमें यत् किंचित् ऊनता नहीं देखपड़ती। आधार स्वरूप कुछ न होनेपरभी भवभूतिने ऐसी रोचक कथा रची, इससे बोध होता है कि उसकी कल्पनाशक्ति बहुत प्रचंड थी। इसके सिवाय कापालिकपंथानुयायी दो पात्रोंकी नाटकमें योजनाकर उसका मेल आख्यायिकासे बहुतही उत्तमतया मिलाया है। ये सब बातें उसकी चतुरताका पूर्णरूपसे परिचय देती हैं। पात्रोंके भिन्नर स्वभावोंकी विचित्रता स्पष्टरूपसे प्रदर्शित करनेकी रीति संस्कृत नाटकोंमेंही नहीं सुतरां संस्कृत क-

वितामात्रमें कम पायी जाती है; और तो क्या पर नाटकोंमें 'वेणीसंहार' और काव्योंमें 'महाभारत' के अतिरिक्त उक्त गुण किसी काव्यमें कहींभी पूर्णरूपसे दृष्टिपथमें नहीं आता ऐसा कहना स्यात अनुचित साहस न कहा जायगा। वर्त्तमान नाटकमेंभी वह गुण वैसा कुछ विशेष नहीं है; पर तौभी प्रत्येक पात्रमें उसकी भिन्न २ अवस्थानुसार जो जो गुण रहने चाहिये वे उत्कृष्टतापूर्व्वक प्रदर्शित किये गये हैं। माधव और मकरंदकी शूरता और परस्परका स्नेह, मालतीके स्वभावकी गंभीरता एवं कुलाभिमान, लवंगिका, बुद्धिरक्षिता और अवलोकिताकी प्रवचनपटुता, कामंदकीकी प्रौढ़ता और चतुराई; अघोरघंट और कपालकुंडलाकी निठुरता; प्रभृति सब गुण इसमें पूर्णरूपसे पाये जाते हैं। इसका प्रधान रस प्रायः शृंगार जान पड़ता है; तौभी अन्य नाटकोंमें वह जितना स्पष्ट और उद्दाम पाया जाता है उतना इसमें नहीं पाया जाता। इसमें वह जिस ढंगका पाया जाता है वह बड़ा गंभीर एवं प्रौढ़ है। इसके उदाहरण स्वरूपमें आगे एक दो बातें लिखी जाती हैं। प्रथम अंकांतर्गत मदनोद्यानमें मालतीके दृष्टिपथमें आनेके कारण माधवका कामार्त्त होना और उसका समस्त वृत्तांत मकरंदसे कथन करना; आगे छठे अंकमें मालतीका करुणाप्लावित हो लवंगिकाकी भ्रांतिसे माधवके गले लपटना और अनन्तर उसे देख लज्जित होना, वैसेही आठवेंके आदिका खूबीदार शृंगारका चुटकुला आदि आदि। पर इन सबकी अपेक्षा पांचवे अंकमें कविने अपनी चतुरताकी पराकाष्ठा प्रदर्शित की है; उसमें भयानक, अद्भुत, बीर और करुणादि भिन्नभिन्न रस अवश्य एकत्रित हुए हैं। पर उनमें शृंगारका जो अंश है वह उदात्तरूप एवं अत्यन्त शुद्ध है। इसमें अणुमात्रभी संदेह नहीं है कि भिन्न भिन्न रसोंकी ऐसी एकात्मता बहुतही थोड़े स्थानोंपर मिल सकेगी। मालतीका विवाह जब

नंदनके साथ निश्चित हुआ तब माधव निराश हो गया, उस समयकी उसके मनकी अवस्था, और वैसेही कपालकुण्डलाके मालतीको उठा ले जानेपर विरहके कारण उसे जो असह्य दुःख हुआ आदि प्रसंगोंका वर्णन अत्यन्त अनूठी उक्तिद्वारा उत्कृष्टतया किया गया है। इस नाटकमें वीभत्स रसकाभी एक सुप्रसिद्ध उदाहरण पाया जाता है। वह यह कि जब माधव सायंकालके समय हताश हो मर्घटामें फिर रहा था तब भूत प्रेतोंकी जो लीलाएं उसके दृष्टिपथमें आयीं, उनका तत्कृत वर्णन है। कहनेका अभिप्राय यह है कि कविने प्रायः सब रस इस ग्रन्थमें गठित किये हैं, और उनका परिपाक भी वैसाही परमोत्कृष्ट बना है। बीचबीचमें कहीं कहीं कुछ वर्णन आ गये हैं सो वह भी बहुत सुन्दर हैं, और विशेषत. नवमअंकमें सौदामिनीने आकाशमार्गसे यात्रा करती बार पद्मपुरनिकटवर्तिनी वनश्रीका जो वर्णन किया है वह बहुतही बहारका है। इस नाटकमें रचनाके सम्बन्धसे एक बात विशेषरूपसे ध्यानमें रखने योग्य है, क्योंकि वह अपर थोड़ेही ग्रन्थोंमें पायी जाती है। संस्कृतके काव्यनियमप्रधानग्रन्थोंमें यह नियम नहीं पाया जाता कि नाटकमें इतनेही अंक रहने चाहिये; अतः अंगरेजी नाटकोंकी नाईं सदा उसमें पांचही अंक नहीं रहते किन्तु कहीं कहीं वे दस पर्य्यन्त भी पाये जाते हैं। वहीं बात वर्त्तमान नाटकमें भी पायी जाती है; और उसके अपर दोनोंमें नाटकोंमें न रहकर इसमें रहनेका कारणभी स्पष्टही है। वह यह कि इसका संविधानक (कथासूत्र) बहुत लम्बा होने के कारण सात आठ अंकोंमें शेष होने योग्य न था। पर तौभी यह नाटक यदि खेला जाय तो जान पड़ता है कि उस के लिये और नाटकोंकी अपेक्षा अधिक समय न लगेगा, क्योंकि उसकी पृष्ठसंख्या अपर नाटकोंके इतनीही है।

'महावीरचरित' नाटक रामायणकी सर्वप्रसिद्ध कथाके आधार-से रचा गया है। तौभी उसकी आख्यायिकाकी अपेक्षा उसका सं-विधानक बहुतही निराले ढंगसे बांधा गया है; एतावता वह आगे सं-क्षिप्तरूपसे लिखा जाता है। विश्वामित्र दशरथ राजाके यहां जा यज्ञ-विघ्ननिवारणार्थ राम लक्ष्मणको अपने आश्रमपर ले आये। य-ज्ञोत्सव देखनेके लिये जनक राजाभी निमन्त्रित किये गये थे, पर उन्हें अवकाश न मिलनेके कारण उनने अपने भाई कुशध्वज और कन्या सीता एवम् उर्म्मिलाको वहां भेज दिया था। इस प्रकारसे आदिमें इन दोनों राजकुमार और राजकुमारियोंकी भेंट हुई। इतनेमें रा-वणका भेजाहुआ एक राक्षस सीताकी मंगनीके अर्थ कुशध्वज और विश्वामित्रके निकट आया। उसकी स्वागत पूंछ उनलोगोंने उसे वहां बैठने को कहा ही था कि उतनेमें ताड़काका भीषण शब्द श्रवणगत होने लगा। तब विश्वामित्रकी आज्ञानुसार श्रीरामने तत्क्षण उसका वध किया। तदनन्तर कुशध्वजकी आज्ञासे शिवजीका धनुप वहां लाया गया श्रीरामचन्द्रजीके उसे तोड़नेपर उन दोनों लड़कियोंका यथाक्रम श्रीराम लक्ष्मणको दिया जाना निश्चित हुआ। इस सब घटनाको देख राक्षसनाथ रावणका भेजाहुआ दूत भयचकित और निराश हो लंकाको लौट गया और वहां पहुंचनेपर उसने वहांका समस्त वृत्तान्त रावणके पितामह एवम् अमात्य माल्यवान्को कह सुनाया। उसके सुनतेही वह गम्भीर चिन्तामें मग्न हो गया; और तबसे रामका घात करनेके लिये वह नानाभांतिके उपाय और प्रयत्न करने लगा। प्रथम वह महेन्द्रद्वीपको गया और वहां उसने शिवको-दण्डका सब वृत्तान्त परशुरामको सुनाया, और रामसे उसका बद-ला लेनेके लिये उन्हें उत्तेजना दी। परशुरामभी परम क्रुद्ध हो मिथि-लानगरीको आये। उनके वहां आनेपर रामसे युद्ध न करनेके लिये

विश्वामित्र और वशिष्ठजीने उनकी बहुत प्रार्थना की, पर उनने अपना हठ छोड़ना न चाहा। यह देख राजा जनकके पुरोहित शतानंद बहुत कुपित हुए, और दोनोंका वादविवाद हो शतानंद परशुरामको शापोदकद्वारा भस्म करनेकोही थे कि इतनेमें राजा दशरथने उनकी रक्षा की। आगे स्वयं रामने युद्धकेलिये परशुरामको बोलाया और दोनोंका द्वंद्वयुद्ध होकर परशुराम पराजित हुए। इस प्रकारसे माल्यवान् का पहिला मंसूबा जब व्यर्थ हो गया तब उसने दूसरा मंसूबा फिर बांधा। वह इस प्रकारसे कि शूर्पणखाको मंथराके शरीरमें प्रविष्ट करा तद्द्वारा रामको बनबास करानेके लिये कैकेयीकी बुद्धि फेर दी; और विराध, खर दूषणप्रभृतिको रामका नाश करनेकी आज्ञा प्रदानकर कपिराज बालीको अनुकूलकर उसेभी वही बात जंता दी। इधर परशुरामजीने शस्त्रसंन्यास किया और दंडकारण्यनिवासी मुनिजनोंकी रक्षाका भार रामपर समर्पितकर, आप तप करनेको चलेगये। रामनेभी उसका परम हर्षके साथ स्वीकार किया, और उसके योगसे कैकेयीप्रदत्त वनवासका उन्हें अणुमात्रभी दुःख न हुआ। दंडकारण्यनिवासी खर दूषणादिके वधके वृत्तांत, और सीताहरणआदि जटायु और संपातिके संवादमें सूचित किये गये हैं। आगे सीतान्वेषणतत्पर राम लक्ष्मण अरण्यमें जब भ्रमण कर रहे थे तब बिभीषणकी भेजीहुई श्रमणा नामकी एक स्त्री उसका पत्र लेकर उन्हें मिली। इस पत्रमें बिभीषणने रामकी शरण चाही थी। रामने उसका स्वीकार किया और उससे जानकीके समचार पूछे, उसने उत्तरमें निवेदन किया कि सीताने एक वस्त्र नीचे डाल दिया था, उसे सुग्रीव, बिभीषण और हनुमानादिकोंने आपके स्नेहके कारण अपने पास रख छोड़ा है। इस बातके जानतेही वे दोनों किष्किंधानगरीकी ओरको गये। आगे राम और बालिका युद्ध हुआ, और बालिने अपने प्राणोत्क्रमणके समय सुग्रीव

और अंगदको राज्याधिकार दे अग्निसाक्षिक राम और सुकंठकी मित्रता करायी। इसके अनंतरकी लंकादहनादि घटनाएं नाटक सम्प्रदायानुसार कहीं पड़देके पीछेके और कहीं पात्रोंके संवादादिमें सूचित की गयी हैं; और घोरयुद्धका वर्णन इन्द्र और चित्ररथके परस्परालापके छलसे किया गया है। अन्तिम अर्थात् सातवें अंकमें पहिले लंका नितान्त शोकाकुल होकर आती है और अनन्तर अलका अर्थात् यक्षेश्वर कुवेरनगरीकी अधिष्ठात्री आकर उसकी सांत्वना करती है। अन्तमें पुष्पकविमानारूढ़ हो राम, सीता लक्ष्मण और सुग्रीव विभीषणादि अयोध्याकी ओर प्रस्थित होते हैं; और मार्गमें राम भूतपूर्व्व भिन्न भिन्न घटनाओंका वृत्तान्त सीतासे कहते जाते हैं। रामके अयोध्या पहुंचने पर भरतभेंट हो उनका राज्याभिषेक हुआ है।

उक्त संविधानकद्वारा यह बात लक्षित होती है कि रामायण वर्त्तमान नाटकका आधार केवल नाममात्रको मानी जा सकती है, पर वास्तवमें उसकी समस्त रचना कविकल्पितही है। रामायणकी कथा और वर्त्तमान संविधानकमें पहिला बड़ाभारी भेद यह है कि यद्यपि परशुराम तथा बालीसे रामका युद्ध और बनवासादि स्वतन्त्र घटनाएं हैं तथापि कविने यहांपर यह बात कल्पित की है कि उक्त घटनाएं माल्यवान्ने कपटपूर्वक करायीं। हमारे चतुर कविने ऐसा क्यों किया इसका कारण भी विवेकी पाठकोंको ज्ञात होही चुका होगा। वह यह है कि ऊपर कैसी बातें कितनीही अधिक हों तौ भी उनका पृथक् वर्णन काव्यमें निर्वाहित होसकता है। पर उनके परस्परसे असम्बद्ध होनेके कारण, और नाटकके मुख्य पर्यवसानकी ओर जैसे यहां रामरावणयुद्ध—उनकी गति बिलकुल न होने के कारण, वे नाटकमें अधूरी दीख पड़ती हैं; और इसके योगसे नाटकके प्रधान

गुण वस्त्वैकताका * भंग होता है। इसी प्रकारके और दूसरे हेरफेर भी जो कविने किये हैं वे सब युक्तियुक्त हैं। ताड़काको देख विश्वामित्र डर गये, रावण शिवधनुष्यकी प्रत्यञ्चा चढ़ाती बार उलटकर गिर पड़ा, परशुरामको क्रुद्ध देख दशरथ राजा भयभीत हुए, इत्यादि बातोंसे मनकी प्रशस्तता नहीं जान पड़ती अतः कविने उनका लोप कर एक निरालीही रचना रची है। परशुरामका स्वभाव जैसा कुछ निर्दय एवं अत्युग्र प्रदर्शित किया जाता है ठीक वैसाही यहां नहीं प्रदर्शित किया गया है किंतु उसमें थोड़ीसी सौम्यता झलकायी गयी है। वैसेही बाली और सुग्रीवका बैर, उसमेंभी पहिले की उद्दण्डता, और उसके साथ रामका कपटव्यवहार आदि बातोंका इस नाटक में कहीं पता तक नहीं लगने पाता। सारांश नाटकप्रणेतृगणोंकी प्रथानुसार भवभूतिने संविधानकको चमत्कृतिजनक करने तथा पात्रोंकी उदात्तशीलता प्रदर्शित करनेके हेतु रामायणकी मूलकथाको अपनी आवश्यकतानुसार बहुत स्थानोंपर परिवर्तित किया है।

इस नाटकके नामके अनुसार इस में वीर रस ही प्रधान पाया जाता है; और आदिमें सभ्यापेक्षित गुणोंका वर्णन करताहुआ सूत्रधार भी वही बात कहता है।

> महापुरुषसंरम्भो यत्र गम्भीरभीषणः।
> प्रसन्नकर्कशा यत्र विपुलार्था च भारती॥
> अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीरःस्थितो रसः।
> भेदैःसूक्ष्मैरभिव्यक्तैःप्रत्याधारं विभज्यते॥

---

* (Unity of Action) नाटकके संविधानकमें जो कृत्य रहते हैं उन्हें नाटककी परिभाषामें 'वस्तु' कहते हैं; उसकी एकता अर्थात् समस्तअंगों का परस्पर का मेल।

"अभिनीत होनेवाले इस अगले नाटकमें महापुरुषोंकी गंभीर एवं भयावनी उग्रता प्रदर्शित की जानी चाहिये; आलाप स्पष्ट एवं उद्दाम रहने चाहिये, पात्रगण उच्च पदस्थित रहने चाहिये और उनमें वीर रस जागृत रहना चाहिये, वह इतना कि जिस पात्रको जितना आवश्यक और शोभाप्रद हो।"

उक्त प्रस्तावनानुसारही इसमें सब गुण पाये जाते हैं। कहीं कहीं थोड़ेसे स्थलोंपर मात्र शृंगार रस झलकता है। इसके सिवाय अपर कोई भी रस 'महावीर' चरितमें बहुधा नहीं पाया जाता कहना स्यात अयुक्तिसंगत न समझा जायगा।

इस नाटक के पात्रोंके स्वभावोंका यहांपर वर्णित होना आवश्यक नहीं है; क्योंकि वे सर्व्वप्रसिद्धही हैं। पुराण वा इतिहासप्रसिद्ध कथाके आधारसे नाटक लिखनेवालेको यह बात स्वयंसिद्धही मिलती है कि पाठक वा दर्शकोंके चित्तमें उन्हें जो वृत्तियां प्रादुर्भूत करानी पड़ती हैं वे पहिले से ही उनमें सिद्ध पायी जाती हैं। उनको केवल इतनीही बातकी ओर ध्यान देना पड़ता है कि संविधानक अप्रयोजक रीतिसे जोड़ा जाकर वा पात्रोंके संवाद अशोभाप्रद लिखे जाकर मूल कथाकी रसहानि न होने पावे। उसमें उक्त चतुराई होनेके कारण वह उस बात को सुधार भी सकता है; इस अंतिम बातको वर्त्तमान नाटकमें भवभूतिने कहां कहां और किस किस प्रकारसे सुधारा है सो अभी पीछे उल्लिखित होही चुका है। सारांश यह नाटक कविकी इच्छानुसार उत्कृष्ट बन भी गयाहै अतः इसके एक भागको उत्तम और दूसरेको अनुत्तम कहना युक्तिसंगत नहीं देख पड़ता। तथापि थोड़ेसे स्थलोंका किंचित् सविशेष वर्णन आवश्यक जानपड़ता है। पांचवें अंकके आदेमें जटायु और संपातिका प्रवेश; वैसेही अंतिम अंकमें राम सीतादि मंडली पुष्पक विमानमें बैठकर सूर्य्यमण्डलके सन्निधि गयी और भूतपूर्व

वृत्तांतस्मारक दंडकारण्यसे होतीहुई अयोध्याको लौट आयीं, यह दोनों वर्णन भव्य एवं उदात्तर*सगर्भित हैं। छठे अंकमें सीताकेलिये उत्कंठित हो रावण आया है; फिर मंदोदरीको आतीहुयी देख उसने अपना मनस्ताप छिपाया, और तत्कथित सेतुबंधनके संवादका उपहास कर उसे आश्वसित किया। आगे उसके सैन्यपति महस्तने आकर रामके ससैन्य समुद्र पार आकर लंकापर आक्रमण करनेके समाचार उसे दो बार सुनाये पर उसने प्रमत्तताके कारण कुछ भी नहीं सुना; इत्यादि बातें बड़ी चतुराईसे लिखी गयी हैं। उनसे रावणका गर्व, संकट विषयक सोन्माद अनास्था, और अप्रासंगिक कामातुरता आदि खचितहुईसी स्पष्टरूपसे दृष्टिगत होती हैं।

भवभूतिका तीसरा नाटक 'उत्तर राम चरित' है। यह पिछले दोनोंकी अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध है, और कोई कोई तो इसे सब संस्कृत नाटकोंमें उत्तम मानते हैं। कालिदासके विषयमें इस नाटकके संबंधसे जो आख्यायिका परंपरासे चली आती है, वह अभी उपर उल्लिखित होही चुकी है, तद्वारा भवभूतिकी संस्कृतज्ञ मंडलीमें जो मान मान्यता है सो स्पष्टरूपसे लक्षित होती है। यह नाटक पिछले 'महावीर चरित' के उत्तरार्द्धके रूपमें है। पिछलेमें रामायणकी कथा रामके राज्याभिषेक पर्य्यंत पायी जाती है, और इसमें वह बहुधा अंत पर्य्यंत वर्णित है, पर इसमें भी 'महावीर चरित' की नाई मूलकी अपेक्षा बहुतेरे स्थानों पर हेरफेर किये गये हैं। वे निम्न लिखित संविधानकद्वारा सहजहीमें लक्षित हो सकते हैं।

रामके राज्यारूढ़ होनेके अनंतर ऋष्यशृंगने द्वादश वार्षिक सत्र

---

*संस्कृत वा भाषाके किसी प्राचीन वा अर्वाचीन रसग्रन्थ प्रणेता ने 'उदात्त' नामका रस वर्णित नहीं कियाहै। 'उदात्त नामका रस माननेकी सम्मति केवल स्वर्गवासी पण्डित विष्णुकृष्ण चिपलूणकर शास्त्रीनेही प्रकाशितकीहै।

करना प्रारंभ किया। ऋष्यशृङ्ग रामकी बहिन शांताके पति थे। इन-के आमंत्रित करने पर रामकी तीनों मा, वशिष्ठ, अरुंधती आदि राज-कुल गुरु उनके यहां गये। मिथिलानरेश जनकजी राम और सीता की भेंटकेलिये आ अयोध्यामें कई दिनोंसे टिकेहुए थे, वे भी इसी अवसर पर मिथिलाको लौट गये। उनके वियोगके कारण जानकीको खिन्न देख उनके मनोरंजनार्थ रामने अपने समस्त भूतपूर्व वृत्तांतों का चित्रपट प्रस्तुत करानेकेलिये लक्ष्मणको आज्ञा दी। उसे लेकर लक्ष्मण आये, और उसके चित्र वे यथाक्रम दिखा रहे थे कि रामको उन उन घटनाओंके स्मरणद्वारा पूर्वानुभूत हर्ष, विरह और शोकादि मनोवृत्तियोंका एकबार पुनः अनुभव प्राप्त हुआ। उक्त चित्रपटको देखते देखते दंडकारण्यकी वार्त्तातक जब आपहुंचे, तब रामको जानकीके वियोगका स्मरण असह्य हो उनने लक्ष्मणको ठहरनेकेलिये कहा। उस चित्रित वनशोभाको देख, सीताका, गर्भवती होनेके कारण इस बातपर जी चला कि भागीरथीके पावन कूलस्थ वनमें रहना चाहिये। सीताकी उक्त इच्छा पूर्ण करनेकेहेतु रामने लक्ष्मणको रथ प्रस्तुत क-रनेकी आज्ञा दी। लक्ष्मणके इधर चले जानेपर सीता चित्रदर्शनसे परिश्रांत हो रामका हाथ उसीसे ले सोगयीं। इतनेमें दुर्मुख नामका राम का गुप्तवार्त्ताहर वहां आया। उसे रामने पूछा कि लोग हमारे विषय में क्या चर्चा करते हैं तब उसने सीता विषयक भयावना जनापवाद उनके कानमें कहा। इसके सुनतेही राम मूर्च्छित हो गये, पर शीघ्रही उनकी मूर्च्छा टूटनेपर निरुपाय होनेके कारण उनने सीताको वनमें छोड़ देनेकेलिये निश्चय किया। और इस हृदयदाही विचारकी दु-र्मुखद्वारा गुप्तभाव पूर्वक लक्ष्मणको सूचना दी। इसके अनंतर अ-गला बहुतसा वृत्तांत–अर्थात् स्वयं गंगाका कुश लव युवकको बाल्मी-किके आधीन कर देना, ब्रह्मासे वर पा आद्य कविका रामायण प्रणीत

करना; वशिष्ठ, अरुंधती, और रामकी माता आदिकोंका सत्रसमाप्ति के अनंतर बाल्मीकिके आश्रमपर आकर कुछ काललों ठहरना, रामका अश्वमेध प्रारंभ कर घोड़ेको छोड़ना और उसकी रक्षाके लिये लक्ष्मणके पुत्र चन्द्रकेतुको नियुक्त करना, ये सब बातें जनस्थान * निवासिनी वासंती नामक वनदेवी और बाल्मीकिआश्रमस्थित तपस्विनी आत्रेयीके परस्परके संलापमें सूचित की गयी हैं। आत्रेयीने अंतमें यहभी कहदिया कि इस पंचवटीमें शंबूक नामका एक शूद्र स्वधर्म विरुद्ध तपकर प्रजामात्रके अकाल मरणादि आपत्तियोंका कारण हो रहा है यह बात आकाशवाणीद्वारा जानकर उसे दंडित करनेके निमित्त राम इधर शीघ्रही आनेवाले हैं। उक्त कथनानुसार रामके वहां आ उसका बध करतेही वह अपने दिव्य शरीरको धारणकर प्रगट हुआ। आगे शंबूकसे बात चीत करनेपर रामको विदित हुआ कि यह दंडकारण्य है तब वे पूर्व वृत्तांतका स्मरण कर वहांकी शोभा देखने लगे। अनंतर अगस्ति मुनिके यहांसे संदेशा आनेपर उन ऋषिके दर्शनार्थ राम वहां गये वहां से लौटकर अयोध्याको जातीबार रामने अपने पुष्पक बिमानको उस दण्डकारण्यमें पुनः ठहराया, और विचारा कि पूर्व्वके स्थलोंका निरीक्षण कर सीताविरहके दुःखको किंचित् हलका करलें। परन्तु यह तो कुछ नहीं हुआ उलटे जनस्थानके दर्शनद्वारा उनके वियोगानलकी ज्वाला अधिकतर धधक उठी और उसके योगसे वे मूर्च्छित हो गये। इस भावी अनर्थको पूर्व्वहीमें जानकर उसके निवारणार्थ गङ्गाने उपाय भी सोच रखाथा। वह यह कि अपने प्रभावसे सीताको अदृष्ट रहनेकी शक्ति प्रदानकर तमसाको उसके निकट रहनेकी आज्ञा दे रक्खी थी। अतःराम के मूर्च्छापन्न होतेही सीता अदृश्य रूपसे उनके पास गयीं, उनके

* संप्रति जिसे 'नासिक' कहते हैं उसीका आसन्नवर्त्ती प्रदेश प्राचीन कालमें 'जनस्थान' के नामसे पुकारा जाता था।

हाथ का परिचित स्पर्श होतेही रामकी मूर्च्छा टूटगयी। पर नेत्र उघाड़कर देखनेपर निकट कोईभी दृष्टिगत नहीं हुआ तब नितांत खिन्न हो उनने विचार किया कि सीताके निदिध्यासके कारण मुझे यह योंही भ्रम हुआ। इतनेमें वनदेवी वासंती घबराई हुई रामके पास आयी, और कहने लगी कि सीताने पूर्वमें जिसे अपने हाथों पालपोसकर बड़ा किया उस अल्पवयस्क युवा हाथीपर एक विशालकाय हाथी आक्रमण कर रहा है। तब उसकी रक्षाके हेतु राम उधरको गये। पर वहां जाकर देखा तो उसे जय प्राप्त कर अपनी स्त्री के साथ जलबिहार करते पाया। इसी प्रकारसे अन्य पशु पक्षियोंको भी उनने पूर्व्व परिचित पाया, और वासंतीके भूतपूर्व्व अनेक घटनाओंका स्मरण दिलाने पर औत्सुक्यादि वृत्तियां उनके मनमें प्रादुर्भूत हुई। बात चीतकरते करते सीताकी चर्चा छेड़ वासंतीने उसके परित्यागार्थ हृदयभेदक शब्दोंद्वारा रामका उपालंभ किया। सीताकी चिरवियोग, के कारण घोर अरण्यमें क्या अवस्था हुई होगी सो न विदित होनेके कारण रामका हृदय करुणाप्लावित हो गया, और दुःखसह्य होनेके कारण वे संज्ञाशून्य हो गये। तब फिर पहिलेकी नाई सीताने उनके ललाट को अपने हाथसे स्पर्श कर उन्हें लब्धसंज्ञ किया। पर उन्हें वा वासंती को वह दृष्टिगत नहीं हुई। अन्तमें अश्वमेधका समय न चूकने पावे इस अभिप्रायसे राम विमानासीन हो अयोध्याकी ओर निकलगये। इसके आगेका स्थल वाल्मीकिका आश्रम मानागया है। वहां वशिष्ठादि मण्डली थी ही, और जनकजीभी मुनिके दर्शनार्थ आगये हैं। वे सब सीताकी हृदयविदारक भीषण अवस्थापर शोकप्रकाशित कररहे थे कि उतनेमें आश्रमके बटूगणोंमेंसे एक उनके निकट आया। उसने अपना नाम लव और अपने जेठे भाईका नाम कुश बतलाया। मातापिताके नाम पूछे जाने पर उसने विदित किया कि वे मुझे ज्ञात नहीं

हैं, हां इतना अलबत्ते मैं जानताहूं कि हम दोनों बाल्मीकि ऋषिके हैं। उन की चाल चलन और मुखाकृतिको देख जनकजी और कौशल्याको विश्वाससा होगया कि इनमें राम और सीताके कुछ लक्षण पाये जाते हैं। इतनेमें उस लड़केके लंगोटिया मित्र दौड़कर उसके निकट आये, और उससे कहनेलगे कि अपने आश्रममें 'अश्व' नामका एक विलक्ष पशु आया है सो चल हम तुझे वह दिखलाते हैं ऐसा कहकर उसे उधर ले गये। आगे उसके उस अश्वको पकड़कर बांध रखनेके कारण अश्वरक्षकलोगोंने उसपर आक्रमण किया। पर रामके दिव्यास्त्र उसे आजन्मतः प्राप्त होनेके कारण उसने अकेलेही सब सैन्यको पराजित किया, उस संवादको सुन कुमार चंद्रकेतु उससे युद्ध करनेके लिये आया। यह सब घटना रामके शंबूकको मार दंडकारण्यसे लौट आनेके पूर्वही हुई। फिर रामने वहां पहुंचतेही दोनोंको युद्ध बंदकरनेकी आज्ञा दे अपने समीप उपस्थित होनेकी आज्ञा दी। चन्द्रकेतुने लवकी बहुत प्रशंसा की, और रामायण कथाके यह प्रधान पुरुष हैं यह ज्ञात होते ही लवने भी रामको प्रणाम किया। आगे कुशभी वहां आया और अनेक कारण ऐसे उपस्थित हुए कि जिनके योगसे रामने अपने दोनों पुत्रोंको पहिचान लिया, अंतमें बाल्मीकि ऋषिकी आज्ञानुसार लक्ष्मणने गंगाके तटपर बड़ा भारी समाज एकत्र बैठ सके ऐसी रंगभूमि प्रस्तुत की और वहांपर उक्त कवि प्रणीत छोटासा नाटक अप्सराओंद्वारा अभिनीत किया गया। सब लोगोंके समीप इस नाटकके अभिनीत करानेमें उक्त मुनिका अभिप्राय यह था कि सीताको वनमें परित्यक्त करनेके पश्चात् जो जो घटनाएँ हुई सो सबपर विदित होजायँ। तदनुसार सीताने अपना शरीर गंगामें विसर्जित किया, उन्हें दो पुत्र हुए, अनंतर गंगा और पृथ्वीने उनकी रक्षाकर दोनों पुत्रों को क्षात्र संस्कार करानेके लिये बाल्मीकिके आधीन किया, इत्यादि

समस्त घटनाएँ उक्त दृश्य काव्यद्वारा सब लोगोंको प्रत्यक्षसी करादी गयीं। अंतमें इस उपनाटककी सीताने पृथ्वीके गर्भमें स्थानप्राप्तिकी प्रार्थनाकी, और उसमें समागयी। अनंतर सब पड़देके भीतर गयीं। परंतु शीघ्रही सब प्रेक्षकोंके समीप सच्ची सीता, गंगा और पृथ्वी यह तीनों गंगासे निकलीं, उक्त प्रकारसे सबके सामने सीताकी शुद्धता प्रमाणित होजानेपर रामने पुन: उनका अंगीकार किया। और अंत में बाल्मीकि मुनिने सबको आशीर्वाद दिया है।

उक्त संविधानकमें प्रधानत: दो बातें कुछ हेरफेर कर लिखी गयी हैं। एक यह कि मूल कथामें यह बात वर्णित है कि लवकुशने राम लक्ष्मणका पराभव किया, पर यहांपर केवल लव और लक्ष्मणके पुत्र चंद्रकेतुका ही युद्ध वर्णित किया गया है। वैसेही दूसरी बात यह कि राम लक्ष्मण और सीताका अंत नितांत दुखके साथ हुआ है पर यहां वह उसके विपरीत प्रदर्शित किया गया है। प्रथम हेरफेर करनेका कारण स्पष्टही है कि नाटकके नायकादि प्रधानपात्रोंको लघुताके दोषसे बचानेके हेतु वह किया गया है; और दूसरा तो अत्यंतही आवश्यक था, क्योंकि दु:ख परिणामी नाटकोंकी–जिन्हें अंग्रेज़ीमें 'ट्राजेडी, कहते हैं–प्रथा संस्कृतमें बिलकुलही नहीं है, और इस प्रकारसे नाटकका अंत न होना चाहिये ऐसी साहित्य शास्त्रकी स्पष्ट आज्ञा भी है। संविधानकके अपर अंगोंकी रचना भी ऐसी चतुराईसे की है कि उसकी सहायतासे कवि प्रधान पात्रोंके उदात्तगुण स्पष्टता पूर्व्वक प्रदर्शित कर सका है। सीता रामको निज प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थीं तिसपर भी चित्रपटके दर्शनद्वारा भूतपूर्व्व घटनाओंका स्मरण होतेही उनका हृदय अत्यंत सार्द्र हो प्रेमनिमग्न होगया था पर तौ भी दुर्मुखद्वारा जनापवाद कर्णगत होतेही उसे उनने तत्क्षण बज्रकी नाईं कठोर करलिया, और वशिष्ठके संदेश तथा अपनी कठोर प्रतिज्ञाको

अनुसृत कर, गले लपटी हुई निद्रोन्मुख सीताको निपट निर्दयता पूर्वक अलगकर अत्यंत सद्गदित हो बिदा किया! दूसरे और तीसरे अंकके प्रसंग भी ऐसेही हृदयभेदक हैं। तद्द्वारा हमारे कविने यह बात स्पष्टकर दिखलायी है कि महाशय पुरुषोंके अन्तष्करण समय विशेष पर ही नहीं किंतु एकही समयमें 'बज्रसे भी कठोर और कुसुमसे भी मृदु कैसे हो जाते हैं। शंबूकबधकी कथा हमारे कविको अवश्यही लिखना पड़ी क्योंकि बिना कारण राजकाज छोड़ दंडकारण्यमें आनेकेलिये रामको कोई निमित्तही न था। वह काम रामकी सदयताका जैसाही घोर बिरोधी है वैसाही रंगस्थल पर उसका खेला जाना भी अप्रस्त जान पड़ता है, एतावता थोड़ेसेमें ही कविने उस कथाको शेषकर शंबूकको दिव्य पुरुषके रूपमें शीघ्रही रंगभूमि पर उपस्थित किया है। तीसरे अंकमें तो करुणारस मानो साक्षात् अवतीर्णही हुआ है। दंडकारण्यकी वनश्रीको देख रामका मन करुणार्द्र हो गया, और वह स्थान चिरकालके अनंतर पुन: आलोकपथमें आनेके कारण जो जो पदार्थ दृष्टिगत होता वह सबभूतपूर्व्व घटनाओंका स्मारक होसीता बिरहके दु:खको अधिकतर जागृत करता। उसी समय सीताकी सखी वनदेवी वासंतीकी भेंट हो गई है। पर इस अंकके संविधानकमें कविने इससे भी अधिक चमत्कृतिजनक एक बात बड़ी चतुराईसे लिखी है। उसने इसके करुणा रसको विशेषरूपसे अनुकूलता प्रदान की है। वह सीताकी अदृश्यता है। घोर काननमें जिसकी अवस्थाका बोध न होनेके कारण रामके हृदयमें दु:खकी तरंगें उठती हैं; स्वयं उसीके सामने उपस्थित होते उन्हें उसका ज्ञान न होना, और उसीका परिचित हस्तस्पर्श होनेके पश्चात् रामकी बातचीत सुन उन्हें उन्माद होनेका वासंतीको संदेह होना, और रामका भी उसे व्यर्थ भ्रम मानना; आदि बातें नितांत हृदयद्रावक हैं; इसके सिवाय यह बातें ऐसी हैं कि इनके योगसे सीता परित्याग

विषयक रामकी कठोरता अत्यंत विस्मृत हो जाती है। चौथे अंकके स्थलके लिये वाल्मीकि मुनिके आश्रमकी योजना अनेक कारणोंसे बहुतही समीचीन एवं समर्पक हुई है। राम और सीता दोनों बाल्या-वस्थासे असामान्य गुणसंपन्न होनेपर भी उन्हें कदापि सुखका लेश मात्र न प्राप्त हुआ, और उनका अंत और भी भयावना हुआ, यह देख कौशल्या और जनकको पराकाष्ठाका खेद हुआ उसके योगसे उनकी चित्तवृत्ति उदास एवं विरक्त हो गयी, उस समयकी उनकी उक्तियोंका पाठक वा दर्शकोंके चित्तपर स्थलौचित्यकी सहायता से विशेष संस्कार करानेकेलिये ऋषिके आश्रमको छोड़ योग्य स्थान दूसरा और कहां मिल सकता है! वैसेही इस असार संसारके अनेकानेक दुःखोंको भोग, सशोक एवं चिंताव्यथित हो शेष दिनोंको काटनेकेहेतु एक ओर बैठा हुआ वृद्ध समुदाय, और आश्रमके दूसरे ओर अनाध्यायके कारण निश्चित हो स्वच्छं-दतापूर्व्वक बालक्रीड़ामें निमग्नहुए वहांके बटुगणोंका समूह, ये दोनों बातें एकके उपरांत दूसरी उल्लिखित होनेके कारण पर-स्परको नितांत शोभामद हुई हैं। क्योंकि संसारकी उक्त दोनों अवस्थाएं परस्परसे नितांत विभिन्न होनेके कारण ऐसे स्थान पर उनका भेद अत्यन्त स्पष्ट रूपसे दृष्टिगत हो विशेष शोभाको प्राप्त होता है। आगे सीताके विषयमें निराशहुए जनक और कौशल्याने जब लवको देखा तो उन्हें यह शंका हुई कि स्यात यह सीताका पुत्र हो आदि वृत्तांत; लवके लंगोटिया मित्रोंका किया हुआ कौतूहलजनक घोड़ेका वर्णन, राजपुरुषोंके धमकानेपर अपर बटुगण और उस क्ष-त्रियकुलभूषणमें तत्क्षण दृग्गोचर होनेवाला अंतर, यह सब बातें बड़ी चतुराईसे लिखी जानेके कारण वे इस अंकको विशेष शोभामद हुई हैं। अस्तु, अगले तीन अंकोंका सविशेष वर्णन करनेकी कोई

आवश्यकता नहीं जान पड़ती, हमारे चतुर पाठकोंको उनके विषयमें तर्कना करने केलिये उक्त संविधानकही अलम् होगा।

'उत्तररामचरित' करुणरसप्रधान नाटक माना जाता है। पहिले अंकमें करुणरस कहीं संभोग शृंगार और कहीं विप्रलंभ शृंगारमें मिलाहुआ पाया जाताहै। दूसरेके अंकमें पुनः विप्रलंभ शृंगारमें मिल वहां उसका आरंभमात्र हुआसा देख पड़ता है। पर अगले अंकमें वह पूर्णरूपसे उपलब्ध होता है। चौथेमें जनक और कौशल्या, तथा दूसरेके आदिमें वासंतीके संभाषणमें शुद्ध करुणरस पाया जाता है। पांचवें और सातवेंके आदिमें उभय योद्धा कुमार होनेके कारण परस्परके संवादमें वीररस विशेष शोभाप्रद बोध होता है। अंतिम अर्थात् सातवें अंकके आदिमें करुण और अंतमें अद्भुतरस है। कहनेका अभिप्राय यह है कि इस नाटकमें कविने करुणारसको प्रधानता दे अन्य रसोंको प्रसंगानुरोधसे वा तदाश्रित वर्णित किया है। यहांलों इस नाटककी अंतर रचनाके विषयमें लिखा गया। पर जो कोई इसके पृष्ठ योंही उलटाकर देखेगा उसेभी हमारे कविके भिन्न भिन्न स्थानोंकी चमत्कारजनक प्रयोगविधिका ज्ञान सहजही में होजायगा। कहीं ऋषिका आश्रम, कहीं वनदेवताओंके रमणीक एवं भव्य वन, कहीं विद्याधरोंका दिव्य प्रदेश, कहीं सुरासुरादि सब भूतसृष्टिअधिष्ठित आश्चर्यसंपन्न रंगस्थल, कहीं समरांगण ऐसे नानाप्रकारके चित्रविचित्र स्थानोंकी कल्पना कियेजानेके कारण प्रत्येक अंकका रस पाठकगण, और विशेषतः दर्शक लोगोंके चित्तमें विशेष आनंद उपजाता है। वर्त्तमान नाटकमें सृष्टिवर्णनको भी दूसरे और तीसरे अंकमें हमारे कवि ले आये हैं। उक्त उभय स्थानोंपर दंडकारण्यका जो वर्णन लिखा गया है वह अत्यंत सुन्दर है। उसी प्रकारसे और और ठौर परभी जहां कहीं लेखानुरोधसे वर्णन करना पड़ा है वहां वहांपर भी वह वैसाही परमोत्कृष्ट लिखते

बना है। इसके पात्रगण प्राय: वही हैं जो रामायणमें प्रसिद्ध हैं; और इस नाटकमें भी उनके उदात्तगुणको कविने समुचित संविधानक जोड़ कर अधिक व्यक्त किया है। सारांश अनेक उत्तम गुणोंके सम्मेलसे 'उत्तररामचरित' परम रमणीक हुआ है। उसकी यह रमणीकता ही प्रधान कारण है कि वह सहसा रसिकप्रिय हो आजपर्य्यंत अपर दोनोंकी अपेक्षा भूतपूर्व पंडितोंमें विशेष प्रसिद्ध है। और इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि उसकी यह समुज्ज्वल ख्याति कालगतिके साथ साथ संतत वृद्धिलाभ करते जायगी और भवभूतिका नाम दिगंतरमें सुप्रसिद्ध हो वह चिरस्थित रहेगा!

यहांलों भवभूतिके सब ग्रन्थोंके विषयमें अर्थात्–उसके तीनों नाटकोंके विषयमें-आलोचना की गयी। अब उनमें स्थूलतया जो विशेषता देख पड़ती है उसका पहिले वर्णन कर तत्पश्चात् उसके कवित्वगुणका समास वर्णन करेंगे। भवभूतिके नाटकोंमें संविधानकके संबंधसे प्रथम तो यह विशेषता लक्षित होती है कि उसका विष्कंभक बहुत सरल रहता है। उसके प्रथम नांदी अर्थात् मंगलाचरणको ही न देखिये। अपर सब नाटकोंमें इसके संबंधसे यही बात पायी जाती है कि इसे पूर्णरूपसे सजानेकेलिये कोई बात उठा नहीं रखी जाती-अर्थात् शिखरिणी स्रग्धरादि दीर्घ वृत्तोंमेंसे किसी एकका प्रयोग कर अर्थ और पदोंकी रचना बड़ी चतुराई से की जाती है। किसी २ नाटकमें एक पद्यसे अभीष्ट सिद्ध न होने के कारण अधिक पद्य भी लिखेहुए पाये जाते हैं। इस बातके उदाहरण स्वरूपमें 'वेणीसंहार' का नामोल्लेख किया जासकता है; इस नाटकमें मंगलाचरण छः सात पद्योंमें शेष किया गया है। इसके योगसे प्रेक्षक जनोंके कुतूहल का विघात होताहै, एतावता 'काव्य प्रकाश' नामक सुप्रसिद्ध साहित्यग्रंथमें यह दूषित निश्चित किया गया है। पर भवभूतिके 'महावी-

रचरित' और 'उत्तररामचरित' इन दोनों नाटकोंके आदिकी नांदी अत्यंत सुबोध हैं और उनका छंद भी अनुष्टुप् है। अब यह बात सच है कि, 'मालती माधव' की नांदी तीन दीर्घ वृत्तोंमें शेष की गयी है और उसमें अर्थ भी चमत्कृतिजनक एवं प्रौढ़ लाया गया है; पर हम समझते हैं कि भवभूतिने प्रसङ्ग विशेषानुरोध वा नाटक खेलनेवाली मंडलीके अनुरोध से वैसा किया हो। अपर सब नाटकोंमें पहिले पात्रोंको रङ्गभूमिपर लानेके लिये कविगणोंकी यह युक्ति पायी जाती है कि सूत्रधार और नटी वा पारिपार्श्वकके संवादोंका प्रथमतः प्रवेश करनेवाले पात्रोंके साथ कुछ न कुछ संबंध जोड़ दियाजाता है। कई नाटकोंमें यह व्यवस्था प्रत्यक्ष नहीं रहती पर श्लिष्ट पदोंके प्रयोगद्वारा उसका आभासमात्र होनेकी तजवीज़ की हुई लक्षित होती है। पर भवभूतिके नाटकोंमें यह बात भी नहीं पायी जाती। विष्कंभक और प्रथमगर्भांक ये दोनों बिलकुल विलग रहते हैं। विष्कंभकमें सूत्रधार कविका वर्णन कर अगले संविधानकका दिग्दर्शन करता है, और पहिले आनेवाले पात्रोंकी प्रेक्षकोंको सूचना देता है। अनंतर पात्रगण आ खेलका प्रारंभ करते हैं। अपर नाटकोंमेंभी कविका वर्णन आदिमें ही किया हुआ पाया जाता है, पर इन दोनोंमें एक बड़ाभारी अंतर दृष्टिगत होता है। भवभूतिके नाटकोंका सूत्रधार अपनी बाह्यताकी अंतपर्य्यंत * रक्षा करता है; पर इस दूसरे नाटकमें वह बात नहीं

* यहां पर कोई कदाचित् यह आक्षेप करेंगे कि सूत्रधारके इस बाह्यताकी 'उत्तररामचरितमें' निष्क्रांतिपर्य्यंत रक्षा नहीं की गयी है; क्योंकि उसकी नटके साथ सीताके जनापवादके विषयमें बातचीत होने पर वे दोनों रामकी ओर चले गये हैं। पर किंचित् विचारांश करनेपरयह बात ध्यानमें आती है कि उस नाटकमें सूत्रधारकी सूत्रधारकता 'एषोऽहं कार्य्यवशादायोध्यिकस्तदानींतनश्च संवृत्तः' (देखिये मैं आजके अभिनयार्थ अयोध्यावासी एवं तत्कालीन बनाहूं) ऐसा कहते ही चली गयी; इसके अंतरका उसका नटोंके साथका संवाद रंगस्थ अपर पात्रों

दीखपड़ती, क्योंकि वह उसे तुरंतही भूल जाता है, और प्रथमतः प्रविष्ट होनेवाले पात्रोंसे मैं परिचित हूं ऐसा प्रदर्शित करता है। नाटक प्रणयनप्रथानुसार यह बात बड़ी विलक्षण है; पर ऐसा अनुमान होता है कि इसे दोष मानकर इससे अपने नाटकोंको बचानेकेलिये हमारे कविने विष्कंभकको विशेष चमत्कृतिजनक करनेकेलिये अपनी चतुराई यत्किंचित् भी खर्च नहीं की। और इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि उक्त विपरीतता यद्यपि यथार्थमें दोषरूप हैं तथापि बड़ेबड़े नामी कविगणोंने† भी अपने पाठक वा श्रोतागणोंके चित्तमें चमत्कार भासित करानेके हेतु उन्हें अपने काव्योंमें आश्रय प्रदान किया है, एतावता इस बातके कहनेमें कोई अनौचित्य नहीं बोध होता कि चाहिये वह उसका प्रयोग सुखेन करसक्ता है; पर जब एकही युक्ति अनेक व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकारसे प्रयुक्त हो जाती है तब उसमें अणुमात्र भी रस नहीं रहता; और यदि श्लेष साधनार्थ यत्नकर भवभूति विष्कंभकको वैसा चमत्कारोत्पादक करही देता तौभी वह भूतपूर्व्व कविगणोंके अनुकरणकी नांई ही दीखपड़ता। हम यह समझते हैं कि इन्हीं दोनों कारणोंको विचार भवभूतिने अपने नाटकोंके विष्कंभक की ऐसी अकृत्रिम रचना की है; और यही आद्य प्रथा होगी ऐसा स्पष्ट बोध होता है। अंगरेजीके नाटकोंमें मंगलाचरण, विष्कंभकादिकी

कैसाही जानना चाहिये। नाटककी कथा प्रारंभ करनेका यह ढंग बहुतही बढ़िया है, सो प्रसंगवशात् अपने रसज्ञ पाठकोंको सूचित किये विना हमसे न रहागया।

† नाटकोंकी चर्चा करती बार सामान्यार्थबोधक 'कवि' शब्द व्यवहृत करनेका कारण यह है कि उक्त प्रकार अन्यदेशीय कवि होमर और मिलटनके महाकाव्यके आदिमें पाया जाता है। उक्त दोनों कवियोंने स्वानुकूलताके हेतु कवित्व देवताकी प्रार्थना करती बारही सहसा काव्यके कथानकका आरंभ करदिया है। ऐसा करनेमें यही खूबी है कि जैसे अनंत जलराशि समुद्रमें नदीमुखद्वारा प्रवेश होता है वैसेही पाठकोंको हो उन्हें यह विस्मय हो कि हम मुख्य कथानकलों कैसे आपहुंचे।

प्रधान होनेके कारण सहसा नाटक आरंभ किया जाता है और रङ्ग-भूमि पर आनेवाले पात्रोंके बोधार्थ एक हस्तपत्रके अतिरिक्त अपर-साधन ही नहीं रहता, उनके यहां यह प्रथा अलबत्त पायी जाती है कि आदि और अंतमें श्रोतागणोंको संबोधन दे सूत्रधार संभाषण करता है; पर इन संभाषणों और संस्कृत नाटकके विष्कंभक और भरतवाक्योंमें (चर्चरीमें) बहुतही अंतर लक्षित होता है। नाटकाभिनयका आरंभ और अंत एक साथही किया जाय तो अच्छा नहीं दीख पड़ता, सो न दीखपड़े; और श्रोतृगणोंके चित्त अगले नाटककी ओर संलग्न हों; वा नाटक शेष हो जानेपर बहुमानपूर्व्वक सधन्यवाद वे विसर्जित किये जायँ; इसी अभिप्रायसे अंगरेज नाटक-प्रणेतृगण उक्त भाषणोंको नाटकोंमें जोड़ देते हैं, यही कारण है कि उनके यह पुछल्ले उनसे विलग रहते हैं, और कभी कभी तो ऐसा भी होता है कि नाटकप्रणेता उन्हें किसी विख्यात कविसे भी लिखा लेते हैं। तात्पर्य्य विष्कंभक रचनाके विषयमें भवभूतिका अपर नाटक कर्त्ताओंकी अपेक्षा यद्यपि तृतीय पंथ दृष्टिगत होता है, तथापि यही बात निर्द्धारित होती है कि वास्तवमें उसीकी प्रथा यथार्थ और आद्य है। इसके सिवाय दूसरा एक यहभी विचार है कि जिस शिल्पीको निज शिल्पके विषयमें यह दृढ़ विश्वास है कि मेरे बनायेहुए मंदिर के जिस जिस भागको लोग देखेंगे उसकी ओर वे निहारतेही रहेंगे, वह द्वारपर वृत्तखंड बनानेकेलियेही अपनी आधेसे अधिक शिल्प-पटुता क्यों व्यय कर देगा ?

भवभूतिके नाटकोंके विषयमें ध्यानमें रखने योग्य दूसरी बात यह है कि वे तीनों परमोत्कृष्ट होनेपर भी एकसे नहीं हैं, तीनोंके रस भिन्न भिन्न हैं और तदनुसार उनकी रचना भी एक दूसरीसे निराली है। इसके सविशेष उल्लिखित करनेका कारण यही है कि यह बात अपर

नाटकरचयितागणोंके नाटकोंमेंसे किसीके नाटकमें दृग्गोचर नहीं होतीं। स्वयं कालिदासके विषयमें ही विचारांश कीजिये। कवि और नाटकप्रणेताओंके विसदृश गुण एकही व्यक्तिमें पूर्णरूपसे एकत्रित हुए हों ऐसा उदाहरण कालिदासके व्यतिरेक कदाचित् किसी भी देश वा कालमें उपलब्ध न होगा; तौभी उसके तीनों नाटकोंकी परस्परमें यदि तुलना की जाय तो यह बात एक सामान्य पाठकको भी ज्ञात हो जायगी कि पहिलेमें जो रंग ढंग है सो दूसरेमें नहीं है, और जो दूसरेमें है सो तीसरेमें नहीं है। इसके सिवाय स्वके विषय आदिमें भी भवभूति के नाटक परस्परमें जैसे विभिन्न हैं वैसे वे नहीं हैं। दूसरा उदाहरण श्रीहर्षका लीजिये। इसका पहिला नाटक 'रत्नावली' संविधानक चातुर्य्य, पदलालित्य और श्लेषादि गुणोंके योगसे रमणीक होगया है; पर उसीका दूसरा नाटक 'नागानंद' वैसा उपयुक्त न होनेकेकारण सामान्य नाटकोंमें परिणत किया जाता है। उसकी इस अवस्थाका कारण यह है कि उसके कई स्थानों पर पहिले नाटकसे अत्यंत सदृशता पायी जाती है। इसी प्रकारसे और भी कवि उदाहृत किये जा सकते-पर अब ऐसा करना व्यर्थ है! अनंत कालके उदरमें लीन होजानेके कारण कहो वा दूसरे कारणके योगसे कहो, संस्कृत कवियों के ग्रंथोंका अनुसंधान किया जानेपर प्रायः यह बात पायी जाती है कि काव्यके योगसे जिनकी ख्याति चली आ रही है उनके नाम नाटकलेखकोंकी श्रेणीमें नहीं पाये जाते; और बहुतेरोंने यद्यपि अनेक उत्तम २ नाटक प्रणीत किये हैं तथापि उनके नामसे एक नाटक से अधिक ग्रंथही प्रसिद्ध नहीं है। भारवि, माघ, बाण * मयूर, पंडित-

*बाण कविके नामसे प्रसिद्ध 'पार्वती परिणय' नामका एक नाटक हमारे देखनेमें औरभी आया। यह नाटक उस भुवनविख्यात कविप्रणीत है वा किसी अन्यका लिखा हुआ इसका निश्चय करना कोई कठिन बात नहीं है। क्योंकि जो इस नाटक-

राजजगन्नाथ यह लोग पहिले प्रकारके हैं और दूसरे प्रकारमें शूद्रक (मृच्छकटिक), विशाखदत्त (मुद्राराक्षस), नारायणभट्ट (वेणीसंहार), कृष्णमिश्र (प्रबोधचंद्रोदय), रामभद्र दीक्षित (जानकीपरिणय) आदि हैं। उक्त दोनों प्रकारके ग्रंथ आजपर्यंत जिनके प्रसिद्ध हैं ऐसे कवि कालिदासके अतिरिक्त केवल दोही जानपड़ते हैं। एक तो श्रीहर्ष कि जिसके नामसे पूर्वोक्त दो नाटकोंके सिवाय, अतिशयोक्तिरूप वर्णनादि दोष और मृदुतातिशयगुणसंयुक्त 'नैषध' नामक विख्यात काव्य प्रसिद्ध है; और दूसरा 'गीतगोविंद' और 'प्रसन्न राघव नाटक' का कर्त्ता जयदेव। सारांश उत्कृष्ट होकर परस्परमें अत्यंत विसदृश और एकसे अधिक ऐसे नाटक एकमात्र भवभूतिकेही पायेजाते हैं।

उक्त विसदृशताविषयक उल्लेख जैसाही सामान्यतः नाटकके रचनाके संबंधसे कियाजाता है वैसाही वह उसकी प्रत्येक उक्तिके विषयमें भी प्रायः किया जा सकता है: अर्थात् एक स्थान पर जो विचार प्रदर्शित किया गया है वही आगे अन्य स्थान पर प्रदर्शित किया हुआ भवभूतिके नाटकमें बहुधा नहीं पाया जाता। कालिदासके काव्य जिसने किंचित् ध्यानपूर्वक संपूर्ण पढ़ेहोंगे उसके चित्तमें यह बात अवश्यही आगयी होगी कि उस कविके अनेक विचार अनेक ठौर पर बिलकुल एकसे वा थोड़े हेर फेरके साथ प्रदर्शित किये हुए उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ अगले श्लोकः—

के एकही अंकको पढ़ेगा उसे ग्रंथकर्त्ताके साहस और अप्रयोजकताको देख बड़ा अचरज जानपड़ेगा। इस ग्रंथमेंसे बाण कविके नाम और कुमारसंभवसे चोराईहुई एक घटनाको ऋण करदेनेपर ग्रंथकर्ताकी मर्खता और साहसकी सीमामात्र शेष रह जाती है।

प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्याःस्वप्ने समागमः ।
बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि ॥

शकुंतला ६

वही पुनः

हृदयमिषुभिः कामस्यांतःसशल्यमिदं ततः
कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम् ।
नच सुवदनामालेख्येऽपि प्रियां समवाप्य तां
मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति ॥

विक्रमोर्वशी २

उक्त श्लोकके उत्तरार्द्धका आशय पुनः मेघदूतमें भी वर्णित किया है:—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैःशिलाया
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्त्तुम् ।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपिन सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥

उत्तरमेघ ।

इस प्रकारके उदाहरण और भी दिये जा सकते हैं । अभिप्राय यह है कि उक्त कैसी अर्थकी एकता भवभूतिके ग्रंथोंमें नहीं पायी जाती; तौ उसकी उक्तियां भिन्न २ एवं नूतन प्रकारकी पायी जाती हैं । इसके सिवाय उनके विषयमें यहां इस बातका उल्लेख अत्यन्त समुचित जान

पड़ता है कि भवभूतिके विचार संतत निजके ही पाये जाते हैं अन्य काव्य ग्रंथोंका उन्हें यत्किंचित् भी आधार नहीं रहता। *

यहांलों भवभूतिके नाटकोंके विषयमें बाह्यतः और अपर कवियोंके संबंधसे आलोचना की गयी। अब उन्हींके विषयमें अर्थात् उनके गुणोंके विषयमें विचार करते हैं। पीछे कालिदासकी कविता और उसकी पदरचनाके विषयमें लिखती बार यह लिख आये हैं कि उसके सामान्य गुण अत्यंत मधुरता और कोमलता हैं। इन गुणोंका साधन भवभूतिने भी—समय विशेषपर अर्थात् शृंगार और करुणा रसके विषयमें लिखती बार—किया है; पर इस कविके लिखनेकी शैली अपने ढंगकी कुछ विलक्षणही है। यह शैली भवभूतिके नाटकोंमें क्या गद्य और क्या पद्य सर्वत्र पायी जाती है। संवाद उदात्त एवं गंभीर वा सामान्य विनोदका ही क्यों न हो पर इस गुणकी ऊनता कहीं भी लक्षित नहीं होती। जहां जहां वीर रस लाया गया है वहां तो

---

* पीछे कालिदासके समानार्थक तीन श्लोक लिखे गये हैं, उन्हीं कैसा भवभूति का भी एक श्लोक नीचे लिखा जाता है:—

> वारं वारं तिरयति दृशोरुद्गमं वाष्पपूर
> स्तत्संकल्पोपहितजडिमस्तंभमभ्येति गात्रम्।
> सद्यःस्विद्यन्नयमविरतोत्कंपलोलांगुलीकः
> पाणिर्लेखाविधिषु नितरां वर्त्तते किं करोमि॥

मालतीमाधव १

इस श्लोकको उक्त श्लोकोंका आधार है वा नहीं इस बातका निश्चय करना असंभव है। संप्रति इतनाही सूचित करना अलम् होगा कि यह भलेही मान लिया जाय कि इस श्लोकको पिछले श्लोकका आधार है पर तौ भी हमें भरोसा है, कि जब कि उसी उक्तिको उक्त श्लोकमें इतनी स्पष्टताके साथ व्यक्तकर गुरुकी अपेक्षा शिष्यने अधिक प्रशंसा प्राप्त की है तब ऊपर मूलग्रंथमें भवभूतिके विषयमें जो उल्लेख किया गया है उसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं उपस्थित हो सकती।

धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् *

इस श्लोकपादमें वर्णित कुशकी वीरताके अनुसारही शब्दों का वहावभी वहुतही अनुकूल है ! और उक्त चरणही भवभूतिकी पद रचनाका एक उदाहरण है।

भवभूतिने अपने नाटकोंमें भिन्न भिन्न प्रसंगोंपर भिन्न २ रसोंका परिपाक उतार दिया है। उनमेंसे प्रथम शृंगारके विषयमें विचार किया जाता है। यह रस उक्त तीनों नाटकोंमेंसे प्रधानतया 'मालती माधव' मेंही विशेष रूपसे पाया जाता है; और 'महावीरचरितमें' वह योंही कहीं कहीं झलकता है, और 'उत्तर रामचरितमें' वह शुद्धरूपसे नहीं पाया जाता किंतु करुणारसमिश्रित पाया जाता है। अतः हमारे कवि उसे कहांलों प्रतिपादित करसके हैं सो पूर्णतया देखनेकी यदि इच्छा हो तो उसे 'मालतीमाधव'में ही देखना चाहिये। पीछे इस नाटकके विषयमें लिखती बार हम जो लिख आये हैं उसकी हमारे सचेत पाठकोंको बहुधा विस्मृति न हुई होगी; वही बात यहां किंचित् सविस्तर लिखते हैं। भवभूतिके नाटकोंमें शृंगारका जो ढंग पाया जाता है वह किसी नाटक वा काव्यमें प्रायः नहीं पाया जाता। अपने कालिदासादि कवियोंको कविचूडामणि मान योरोपके कई पंडितोंने उन्हें सहसा कीर्त्तिमंदिरके उच्चतम शिखरपर अटलरूपसे स्थित कर दिया है सो जिन अंगरेज ग्रंथ कर्त्ताओंको यह बात नहीं भाती वे सामान्यतः संस्कृत कविताको यह दोष लगाते हैं कि उसके शृंगारका उद्भव शुद्ध प्रेम रससे तादृश नहीं पाया जाता किंतु बहुतांशमें वह कामवासनासेही पाया जाता है। यह कथन हठवादियोंके मतानुसार अर्थात् अंशतः मात्र यथार्थहै। संस्कृत कविताका आद्य शुद्ध स्वरूप जब भ्रष्ट होने लगा तबके बहुतेरे काव्योंमें और अब इधर जिनकी प्रवृत्ति विशेष

* इसकी (कुशकी) धीरों कैसी चाल मानों धरतीको नवाये दे रही है।

रूपसे पायी जाती वे बीभत्स भाणादि * अलबत्ते उक्त दोषसे दूषित हो सकते हैं।

पर इतने ही के कारण समस्त संस्कृत कविताको दूषित करना किस प्रकार युक्तिसंगत हो सकता है उसका विचार करना हम अपने विवेकी पाठकों परही समर्पित करते हैं ! भला यदि यही एक बात होती कि उक्त दोष अकेली संस्कृत कवितामें ही पाया जाता है तौ भी कुछ कहना न था। पर क्या उक्त दोष ग्रीक और रोमन लोगोंकी कविता में नहीं पाया जाता ?—अथवा इतने दूर जानेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है; क्या यह कोई कह सकता है कि अंगरेजी भाषाका रससर्वस्व जिसमें एकत्रित किया गया है वह शेक्सपियर कविकी कविता उक्त दोष से सर्वथा मुक्त है ? यदि यह बात ऐसीही होती, तौ कुटुंबके लोगों के-अर्थात् पुरुष स्त्री लड़के आदि सबके एकत्र पढ़नेके योग्य उस कविकी संक्षिप्त आवृत्ति अलग अलग क्यों निकलती हैं ? अस्तु; संप्रति वर्त्तमान विषयके संबंधसे हमें इतनाही कहनाहै कि पूर्व देशीय अर्थात् फ़ारसी, संस्कृत इत्यादि भाषाओं के कवियोंके काव्य और निर्बंध रहित शृंगार वर्णनका परस्पर नित्य संबंध है यह समझ जो परंपरासे चली आयी है वह सर्वथा सत्यही नहीं है इस बातका जिसे पूर्णरूप से प्रत्यय लेना हो उसे उचित है कि वह हमारे भवभूतिके नाटकोंकी पर्यालोचना करे। उसके अवलोकनद्वारा तदंतर्गत शृंगार किस बहारका है, कैसा सुकोमल और प्रौढ़ है आदि बातें सहजही में लक्षित हो सकती हैं।

शृंगारके कुछ उदाहरण उद्धृत करनेके पूर्व उनके विषयमें पाठकों

---

* भाण नामका नाटकका एक भेद है। उसमें पात्र एकही रहता है। वही उस का नायक मामा जाता है। यह नायक कुछ आत्मगत और कुछ अन्योंको संबोधन दे कहता है। 'वसंततिलक' 'मुकुंदानंद' प्रभति लोगोंमें विशेष प्रसिद्ध हैं।

को यहांपर एक बात सूचित करना अभीष्ट जान पड़ता है। वह यह है कि पीछे कालिदासके ग्रंथोंसे जैसे वे पृथकृता पूर्व्वक थोड़ेसे में उद्धृत करते बने वैसे यहां पर उनका लिखा जाना कई स्थानों पर असंभव बोध होता है। क्योंकि पिछले उदाहरण प्रायः काव्यके होनेके कारण पूर्वापर संदर्भजन्य स्वारस्य हानि हुए बिना वे अलग करते बन गये। पर नाटकोंकी रचना कृत्रिम एवं संविधानकप्रधान रहती है, अतः उसका कहीं का भी भाग पृथक् किया जातेही वह विलग दीख पड़ने लगता है; और यदि वह अलगही किया जाय तो उसके थोड़ेसे अलग करने में काम नहीं चलता। जैसे सुवर्णका पत्र कितनाही लंबा क्यों न हो पर उसमेंसे यथेष्ट टुकड़ा अलगकर लिया जासकता है; पर वैसा टुकड़ा किसी परमोत्कृष्ट मूर्ति वा चित्रमेंसे पृथक् नहीं किया जा सकता। एतावता भवभूति की भणितके रसका जिन्हें अनुभव लेना हो उन्हें समुचित है कि वे उसके तीनों नाटकोंके उत्कृष्ट स्थलोंको जो पीछे उल्लिखित होचुके हैं, ध्यानपूर्व्वक देखें–सारांश उन्हें उन नाटकोंको आद्योपांत विचारना चाहिये। पर ऐसा करनेको जिन्हें अवकाश नहीं है, वा जिन्हें अवसरतो प्राप्तहै पर ग्रंथोंके गुणोंकी यथावत् आलोचना करनेके योग्य जिनकी बुद्धिको रसास्वादनपटुता अद्यावधि प्राप्त नहीं हुई है उन पाठकोंकेलिये अगला संग्रह जैसे बनपड़े किया जाता है

मदनोद्यानमें प्रथमतः माधव मालती के दृष्टिपथमें आतेही उसकी शृंगार चेष्टाओंके योगसे उसकी (माधवकी) जो अवस्था हुई उसका वह स्वयं मकरंदके प्रति वर्णन करता है:

अत्रांतरे किमपि वाग्विभवातिवृत्त–
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममुत्पलाक्ष्याः।
तद्भूरिसात्विकविकारमपास्तधैर्य–

माचार्य्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥

ततश्च,

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलतानां
मसृणमुकुलितानां प्रांतविस्तारभाजाम् ।
प्रतिनयननिपाते किंचिदाकुंचितानां
विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥

तैश्च,

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पंदमंदै-
रधिकविकसदंतर्विस्मयस्मेरतारैः ।
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्याःकटाक्षै
रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितञ्च ॥

मालती माधव १

वैसेही दूसरे दो प्रसंगोंका वर्णन—

सभ्रूविलासमथसोऽयमितीरयित्वा
सप्रत्यभिज्ञमिव मामवलोक्य तस्याः ।
अन्योन्यभावचतुरेण सखीजनेन
मुक्तास्तदा स्मितसुधामधुराःकटाक्षाः ॥
यान्त्या मुहुर्वलितकंधरमाननं तत्
आवृत्तवृंतशतपत्रनिभं वहन्त्या ।
दिग्धोऽमृतेनच विषेणच पक्ष्मलाक्ष्या

गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः ॥

मालतीकी बनाई हुई माधव की प्रतिकृति कलहंसकने जब उसे दी तब मकरंदके अनुरोधवश उसने भी वहां मालतीकी तस्वीर निकाल दी, और तुरंतही एक श्लोक बनाकर उसके नीचे लिख दिया

जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः
प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।
मम तु यदियं याता लोके विलोचन चंद्रिका
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः ॥

मालती माधव १

हम नहीं समझते कि, अपनी हृदय वल्लभाके चित्रफलक पर अत्यंत सरस पद एवं अर्थसंपन्न सुभाषित जिस रसिकको लिखना होगा उसे वह उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट और कहीं उपलब्ध हो सकेगा !

मालतीके कामदेवायतनसे सपरिवार प्रस्थित होनेपर उसकी एक सखी (लवंगिका) पुष्प बिननेके व्याजसे माधवके निकट आयी, और उससे बकुलहार मांगने लगी, जो वृत्तांत माधव मकरंदसे कथन करता है—

माधवः-सखे। श्रूयताम् । अथतस्याः करेणुकारोहणसमय एव महतः सखीकदंबकादन्यतमा वारयोषिद्विलंघ्य बालबकुल-कुसुमावचयक्रमेण नेदीयसी भूत्वा प्रणम्य कुसुमापीडव्याजेन मामेवमुक्त वती। "महाभाग सुश्लिष्ट गुण तया रमणीय एषवः सुमनसां सन्निवेशः कुतूहलिनीच नो भर्तृदारिका वर्त्तते तस्यामभिनवो विचित्रः कुसुमेषु व्यापारः। तद्भवतु कृतार्थता वैदग्ध्यस्य फलतु निर्माणरम-

णीयता **विधातुः** आसादयतु **सरस** एष भर्तृदारिकायां कंठावलंबनमहार्घ्यतामिति"। *

मकरंदः—अहो वैदग्ध्यम्!

लवंगिकाको संबोधन दे मकरंदने जो उक्त उक्ति प्रयुक्त की है उसी उक्तिका प्रयोग ऐसा कौन सहृदय पाठक है जो नाटककर्त्ता के विषयमें न करेगा!

उक्त समस्त संग्रह केवल प्रथम अंककेही हैं, और यह इस नाटकके श्रृंगारका आरंभमात्र है। पर यही जहां अत्यंत पूर्णताको पहुंचा है वहां इस कविकी श्रृंगार विषयक उक्त विशेषता स्पष्टरूपसे लक्षित होती है। यह अंक आठवां है। इसके स्थल, समय और घटना बहुतही उत्तम प्रयुक्त की गयी हैं। स्थान बनप्रदेश, समय ऋतुराज वसंत मासकी मध्यरात्रि, और उसी समय चंद्रका उदय; और घटना भी तदनुकूल—नायक, नायिका अथच एक सखी इन्हीं तीनोंका वहांपर विद्यमान होना। इसके सिवाय उस दिन उत्तरोत्तर जो चमत्कारजनक घटनाएं हुई—अर्थात् मदनोद्यानमें जो साक्षात्कार हुआ, बाघके छूटने और कपाल कुंडल के मालतीके लेजानेकी भयावनी घटना, वैसेही दोनों अवसर पर प्रदर्शित कियाहुआ माधवका पराक्रम, ग्रामदेवीके देवालयमें कियेहुए विनोदका वृत्तांत—उस समयके श्रृंगारके उद्दीपनकी यह सब पूरी सामग्री होनेपर भी हमारे कविने अपनी सदातनकी प्रथा परित्यक्त नहीं की। श्रृंगारमें अत्यंत लीन न हो नायिकाको परम

* अवतरण चिह्नद्वारा जो वाक्य बद्ध किये गये हैं वे सब श्लिष्ट हैं अर्थात् बकुलहार और माधवके लिये उनके भिन्न २ अर्थ होसकते हैं। ऐसे द्व्यर्थी शब्द ऊपर स्थूलाक्षरोंद्वारा प्रदर्शित किये गये हैं। 'विधातुः' और 'सरसः' शब्दको भी श्लिष्ट माना है यह सबको विलक्षण जान पड़ेगा; पर संवादके बहावकी ओर किंचित् विशेष ध्यान देने से तत्क्षण ज्ञात होताहै कि उक्त वाक्य कलापमें श्लेष अंत पर्य्यंत है।

प्रणरूप जो शालीनता (लज्जा) सो इस चुटकुलेमें परमोत्कृष्टतापूर्वक दिखलायी है, और इस नाटकमें उक्त रस यद्यपि इसी स्थानपर पूर्णताको प्राप्त हुआ है तथापि और नाटकोंमें वह जिसप्रकारका दीख पड़ताहै उससे यहांकी बात बहुतही भिन्न पायी जाती है। अस्तु; अंतमें उसके विषयमें हम अपने पाठकोंको इतनाही सूचित करना चाहते हैं कि उक्त संग्रह यहां स्थानसंकोचवश उद्धृत नहीं हो सकता अतः जिन्हें अपनी इच्छा तृप्त करना हो उन्हें उचित है कि वे मूलग्रन्थ वा उसके अनुवादका * अवलोकन करें।

पिछले सब संग्रह शुद्ध शृंगारके हैं। अब जहां वह रसांतरमिश्रित हुआ है वहांके कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं।

इस नाटकका वर्णन करती बार पीछे यह बात लिखहीं आये हैं कि पांचवे अंकमें शृंगार उदात्तरूप होकर वीर करुणादि अपर रसोंसे संयुक्त हुआ है। अतः अगले पद्योंका विचार करनेकेहेतु पाठकोंको उस अंकके संविधानकका स्मरण करना परमावश्यक है।

माधवः—महाभागे ! न भेतव्यम्।

मरणसमये शंकां त्यक्त्वा प्रतापनिरर्गल-
प्रकटितनिजस्नेहः सोऽयं सखा पुरएव ते।
सुतनु ! विसृजोत्कंपं संप्रत्यसाविह पाप्मनः

---

* अवधनिवासी श्रीयुत लाला सीतारामजी बी. ए. (उपनाम भूप) कविने अपनी प्राचीन नाटकमणिमालामें भवभूतिके तीनों नाटकोंको हिंदीमें गुंफित किया है। केवल भाषाजाननेवाले काव्यरसामृतपानपटुलोग इसकेद्वारा भी भवभूतिकी सर्वांग सुंदर अनूठी मूल उक्तिका अनुमानद्वारा आनंदानुभव करसकते हैं 'उत्तररामचरित' को पंडित नंदलालजी दुबे बी. ए. ने भी अनुवादित किया है। इनके अनुवादमें यह विशेषता है कि संस्कृतके जिन छंदोंके श्लोक भाषामें उन्हीं छंदोंमें अनुवादित कियेगये हैं।

फलमनुभवत्युग्रं पापः प्रतीपविपाकिनः ॥

मालती माधव ५

-(सलज्जम्)

त्वत्पाणिपंकजपरिग्रहपुण्यजन्मा
भूयासमित्यभिनिवेशकदर्थ्यमानः ।
भ्राम्यन्नृमांसपणनाय परेतभूमा-
वाकर्ण्य भीरु! रुदितानि तवागतोऽस्मि ॥

—दुरात्मन्! पाषण्ड! चांडाल!

असारं संसारं परिमुषितरत्नं त्रिभुवनं
निरालोकं लोकं मरणशरणं बांधवजनम् ।
अदर्पं कंदर्पं जननयननिर्माणमफलं
जगज्जीर्णारण्यं कथमसि विधातुं व्यवसितः ॥

चामुंडाको बलिप्रदान करनेकेलिये अघोर घंट जब मालती को प्रस्तुत कर रहाथा तब वह बड़े दीर्घस्वरसे चिल्लाती थी। वह आर्तनाद माधवको कर्णगत होतेही श्मशानमें तत्क्षण उसकी जो अवस्था होगयी सो

माधवः—(साकूतमाकर्ण्य)

नादस्तावद्विकलकुररीकूजितस्निग्धतारः
चित्ताकर्षी परिचित इव श्रोत्रसंवादमेति ।
अंतर्भिन्नं भ्रमति हृदयं विह्वलत्यंगमंगं
देहस्तंभः स्खलति च गतिः कः प्रकारः किमेतत् ॥

आगे उसके उस घोर प्राणसंकटको स्वयं देख और उसकी वि-
लक्षण रक्षाका विचार कर वह कहता है:—

माधवः—अहो नु खलुभोः। तदेतत्काकतालीयं नाम।
संप्रति हि

राहोश्चंद्रकलामिवाननचरीं दैवात्समासाद्य मे
दस्योरस्य कृपाणपातविषयादाच्छिन्दतःप्रेयसीम्।
आतंकाद्विकलंद्रुतं करुणया विक्षोभितं विस्मयात्
क्रोधेन ज्वलितं मुदा विकसितं चेतःकथं वर्त्तताम्॥

उस अचिन्त्य अवसरपर माधवके मनमें जो नाना प्रकारकी तरंगें
सहसा उद्भूत हुई उनका वर्णन उक्तश्लोकोंमें कैसा उत्कृष्ट किया-
गया है! ऐसी घटनाओंकी कल्पना कर उन्हें पाठक वा प्रेक्षकोंके स-
मीप यथावत् उपस्थित करदेनेकेलिये ग्रन्थकर्त्ताको मानवीस्वभावका
अर्थात् मनुष्यके हृदयस्थ विचारोंका पूर्णज्ञान अत्यावश्यक है। उसे
भवभूतिने इस स्थानपर इतनी उत्तमताके साथ प्रदर्शित किया है कि
इस नाटककी समालोचना लिखती बार विलसन् साहबने लिखा है
कि इस विषय में यह कवि कालिदाससे भी कहीं बढ़गया है।

निम्नलिखित पद्य करुणामिश्रित शृंगारका उदाहरण है—

निकामं क्षामांगी सरसकदलीगर्भसुभगा
कलाशेषा मूर्त्तिः शशिन इव नेत्रोत्सवकरी।
अवस्थामापन्ना मदनदहनोद्दाहविधुरा-
मियं नःकल्याणी रमयति मनः कंपयति च॥

मालतीमाधव २

मालतीका विवाह जब नन्दनके साथ निश्चित हो गया और माधवको उसके प्राप्तिकी अणुमात्र भी आशा नहीं रही तबकी उसकी भि दुःखोक्ति—

चिरादाशातन्तुस्त्रुटतु नलिनी सूत्रभिदुरो
महानाधिव्याधिर्निरवधिरिदानीम्प्रसरतु।
प्रतिष्ठामव्याजं व्रजतु मयि पारिप्लवधुरा
विधिः स्वास्थ्यं धत्तां भवतु कृतकृत्यश्च मदनः॥

अथवा।

समानप्रेमाणं जनमसुलभं प्रार्थितवतो
विधौ वामारम्भे मम समुचितैषा परिणतिः।
तथाप्यस्मिन्दानश्रवणसमयेऽस्याःप्रविगल-
त्प्रभं प्रातश्चन्द्रद्युति वदनमन्तर्दहति माम्॥

मालतीमाधव ४

विनोदप्रधान शृंगारका उदाहरण——
लवंगिका।

वयं तथा नाम यदात्थ किंवदा-
म्ययं त्वकस्माद्विकलःकथांतरे।
कदम्बगोलाकृतिमाश्रितः कथं
विशुद्धमुग्धः कुलकन्यकाजनः॥

मालतीमाधव ७

चित्रपटको देख भूतपूर्व्व वृत्तान्तोंका स्मरण हो आनेपर भिन्न भिन्न स्थानोंके पूर्व्वानुभूत सुखका राम वर्णन करते हैं--

अलसलुलितमुग्धान्यध्वसञ्जातखेदात्
अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि।
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता॥

उत्तररामचरित १

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्॥*

पुष्पकविमानारूढ़ हो अयोध्याको लौटती बार रामको सीताके प्रथम अभिज्ञान (पहिचान) दायक उत्तरीयके मिलने पर उन्हें जो हर्ष हुआ उसका वे वर्णन करते हैं:—

दृशोः शरच्छीतकरप्रकाशः
कायेऽपि कर्पूरपरागपूरः।
स्वान्तेऽपि सान्द्रामृतकुम्भसेक-
स्तदा यदासीत्किल दृष्टमात्रम्॥

महावीरचरित ७

* इस श्लोक के विषयमें पण्डितप्रसिद्ध जो आख्यायिका है सो पीछे दूसरे पृष्ठ की टिप्पणी में उल्लिखित होही चुकी है।

इतने संग्रह बस होंगे । उक्त पद्योंके मननद्वारा भवभूतिके शृंगारवर्णनका रूप पाठकोंके ध्यानमें आही गया होगा । अब इसी बातके आधारसे भवभूतिकी जीवनयात्राके विषयमें जो एक बात अनुमित होती है उसे यहां पर लिखकर इस रसके निरूपणको शेष करेंगे । संस्कृतके और कवियोंकी अपेक्षा भवभूतिके शृंगारवर्णनमें जो विशेषता दीख पड़ती है उसका कोई कारण अवश्य ही होगा । इसका प्रधान कारण कविका प्रकृतिजात मनोधर्म तो है ही पर जब कि मनुष्यका स्वभाव अन्तलों एकसा प्रायः नहीं रहता किन्तु संसारकी अनेकभांति की घटनाओंके अनुसार न्यूनाधिक होता जाता है ऐसी अवस्थामें उनका विचार करना परमावश्यक है । भवभूतिके वंशका वर्णन आदिमें दिया ही गया है उससे स्पष्ट बोध होता है कि वह लक्ष्मी कृपापात्र न था ।

आगे उसकी कविताशक्ति प्रकटित हो चारोंओर कीर्त्ति विस्तृत हो भाग्योदय होता—अर्थात् प्राचीन राजालोगोंके सम्प्रदायानुसार कवित्व गुणपर मोहित हो वा केवल कीर्त्तिके प्रीत्यर्थ ही कोई राजा उसे अपने यहां टिकाकर उसकी मानमान्यता बढ़ाता पर अपने कविको जनकीर्त्ति व राजसत्कार इन दोनोंमेंसे एकभी प्राप्त नहीं हुआ सो ऊपर कथित होही चुका है । अथवा उसे उक्त दुखद अवस्था होनेका कारण वह स्वयं ही हुआ हो इसमेंभी यत्किञ्चित् शंका नहीं जान पड़ती । अब इधर मात्र इंग्लैण्ड फ्रान्स और अमेरिकादि ज्ञानसम्पन्न देशोंमें गुणवान् मनुष्यको किसीकी ठकुरसुहाती न करते गुणको विशेष शोभादेनेवाली निःस्पृहताका उपयोग लेनेका अवसर हाथ लगा है क्योंकि सर्व्व साधारणमें ज्ञानका अधिक फैलाव होनेके कारण गुणग्राही जनभी बहुत होगये हैं अतः ग्रन्थप्रणेताको उसकी योग्यतानुरूप उक्त लोगोंसे ही आश्रय मिल जाता है । पर ऐसी अवस्था

आजपर्य्यन्त किसीभी देशमें न थीं। यही कारण था कि जिस किसी को प्रसिद्ध होना होता वह कैसाही गुणी क्यों न हो पर विनाल-ज्जाको तिलाञ्जलि दिये और आत्मश्लाघाकी शरण लिये वा अपने स्वामियोंके मनोधारणार्थ वाग्देवीको नर्त्तकीकी नाईं नचाये निजेष्ट लाभार्थ उसे उपायान्तर ही न था। सम्प्रति सारज्ञलोग अ-धिक होनेके कारण मत्सरादि दुर्गुणोंकी उपेक्षा हो गुणकी थोड़ी बहुत परीक्षा होही जाती है। एतावता गुणवान् लोगोंकी सहसा अव हेलना नहीं होने पाती पर पुराकालमें यह बातें कहीं कुछ न थीं। तबकी दुःखजनक अवस्थाका वर्णन महर्षि भर्तृहरिजीने आत्मानुभव से बहुत ही यथार्थ लिखा है:—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताःप्रभवःस्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम्॥

"गुण परीक्षक मत्सरी हो रहे हैं; राजालोग अभिमानके मारे मर रहे हैं; अपर लोगोंकी बातही क्या! उन्हें कुछ बोधही नहीं है; एतावता कवित्वशक्ति उदयको प्राप्त न हो भीतरके भीतरही लुप्त होजाती है।" अस्तु; कहने का अभिप्राय यह है कि उक्त प्रकारकी अनेक बाधाएं प्राचीन कालमें ग्रन्थकर्त्ताकी प्रसिद्धिके मार्गमें आ-हीआती थीं; और जो लोग ठकुरसोहाती न करसकते थे, वा वैसा करने को जो नीचता एवं अधमता समझते थे, उन्हें निजकृपा पात्र बनानेकेहेतु उनके निकट जानेकेलिये लक्ष्मीको कोई मार्गही न मिलता था। अनुमानसे जाना जाता है कि भवभूतिकी भी यही अ-वस्था हुई होगी; क्यों कि उस समय संपूर्ण देश हिंदूराजाओंके अ-धिकारमेंही होनेके कारण भवभूति जैसे कविचूड़ामणिको भी अ-वकृत कर घर पूंछते आये हुए भाग्यकी कोई उपेक्षा न करता! पर

अपने कविके गंभीर एवं उदार मनको राजाश्रित हो विभवानुभव करनेकी अपेक्षा दरिद्रावस्थामेंही स्वतंत्र रहकर अपनी वाग्देवीको निष्कलंक रखना अधिकतर अभीष्ट होगा ऐसा बोध होता है। उसका यह सुदृढ़ निश्चय निंदकोंकी अवज्ञा वा अपने ग्रंथोंकी यथेष्ट ख्याति न होने के कारण आगे कदाचित् वे नष्ट होजायंगे इस भय से टुक भी नहीं हटा; आत्म कवित्वका उसे ऐसा दृढ़ विश्वास था, और उस में ऐसी विलक्षण मंदता थी कि अपने काल के लोगों की निंदासे हतोत्साह न हो उसने भावी कालपरही दृढ़ भरोसा रक्खा, और भविष्यत्में मत्कृति अभिनंदित होगी यह उसने भविष्य कथन किया; यह सब बातें परम आश्चर्य को उपजाती हैं, और साथही इनसे हमारे कविके मनकी अथाह गंभीरता का अनुमान होसकता है! सारांश भवभूति को राजदर्बारका संपर्क कभी भी न होने के कारण उसके मनकी आद्यावस्था में कदापि अंतर नहीं पड़ा, और हम समझते हैं यही कारण है कि उसके शृगांरवर्णनमें ऐसी अपूर्व शुद्धता दृष्टिगत होती है।

भवभूतिने अपने तीनों नाटकोंमें वीर रसको पूर्णरूपसे लिखा है। और 'महावीरचरित, में तो वह प्रधान ही है। शेष दोनोंमें वह कौन कौन से प्रसंगोंपर लाया गया है सोभी पीछे उनके संविधानकोंमें वर्णित होही चुका है। नीचे इस रसके उत्कृष्ट उदाहरण और भी लिखे जाते हैं:—

जामदग्न्यः—अहो दुरात्मनः क्षत्रियबटोरनात्मज्ञता!

न त्रस्तं यदि नाम भूतकरुणासंतानशांतात्मन-
स्तेन व्यारुजता धनुर्भगवतो देवाद्भवानीपतेः।
तत्पुत्रस्तु मदांधतारकवधाद्विश्वस्य दत्तोत्सवः
स्कंदःस्कंदइव प्रियोऽहमथवा शिष्यः कथं न श्रुतः॥

एष मे प्रशमस्य कर्कशः परिणामः ॥

यत्क्षत्रियेष्वपि पुनः स्थितमाधिपत्यं
तैरेव संप्रति धृतानि पुनर्धनूंषि।
उन्माद्यतां भुजबलेन मयाऽपि तेषा-
मुच्छृंखलानि चरितानि पुनः श्रुतानि ॥

महावीरचरित २

—आः क्षत्रियबटो अति नाम प्रगल्भसे।

प्रहर नमतु चापं प्राक्प्रहारप्रियोऽहं
मयि तु कृतनिघाते किं विदध्याःपरेण।
धिगिति विततवह्न्युद्गारभास्वत्कुठार-
प्रविघटितकठोरस्कंधबंधः कबंधः ॥
—एतस्य राघवशिशोः कृतचापलस्य
लूत्वा शिरो मयि वनाय पुनः प्रयाते।
स्वस्थाश्चिराय रघवो जनकाश्च सन्तु
माभूत्पुनर्बत कथंचिदति प्रसंगः ॥

महावीरचरित ३

"महावीरचरित" में आदिसे अंतलों श्रीमद्रामचंद्रजीके पराक्रम-काही वर्णन प्रधान होनेके कारण वह प्रायः वीररसमयही हो गया है। अतः उससे जितने श्लोक उद्धृत कियेजायँ उतने थोड़ेही हैं। अब इस वीररसको विशेष शोभादेनेवाला जो एक दूसरा गुण भवभूतिके नाटकांतर्गत संवादोंमें कहीं कहीं पायाजाता है उसका यहां

पर उल्लेख किया जाता है। वह यह कि निम्न लिखित वीरतोचित संवादोंमें उद्दंडता नाम मात्रको नहीं पायी जाती, वरन वे विनय और चातुर्य्ययुक्त पाये जाते हैं॥

वालिरामौ—(अन्योन्यमुद्दिश्य)

कामंत्वयासहश्लाघ्यो वीरगोष्ठीमहोत्सवः।
किंत्विदानीमतिक्रान्ते त्वय्यवीरावसुंधरा॥

महावीरचरित ५

वैसेही

चन्द्रकेतुः—भो भोः कुमार !

अत्यद्भुतादपि गुणातिशयात्प्रियोऽसि
तस्मात्सखा त्वमसि यन्मम तत्तवैव।
तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि
नन्वेष दर्पनिकषस्तव चंद्रकेतुः॥

उत्तररामचरित ५

मालतीके अचिंत्य प्राणसंकटके समय माधव चामुंडाके मंदिरमें अचानचक जब जा पहुंचा तब वह अघोर घंटपर कृपाण उठाकर धिक्कारपूर्व्वक सक्रोध उसे कहता है॥

माधवः—रे रे पाप !

प्रणयिसखीसलीलपरिहासरसाधिगतै-
र्ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत्।
वपुषि वधाय तत्र तव शस्त्रमुपक्षिपतः

पततु शिरस्यकांडयमदण्ड इवैष भुजः ॥

मालती माधव ५

वैसेही और थोड़ासा आगे बढ़के,

-----अयि भीरु !

धैर्य्यं निधेहि हृदये हतएष पापः
किंवा कदाचिदपि केनचिदन्वभावि ।
सारंगसंगरविधाविभकुंभकूट-
कुट्टाकपाणिकुलिशस्य हरेः प्रमादः ॥

चंद्रकेतु और लवकी भेंट होनेपर परस्परमें वीरतापूरित वार्त्तालाप हुआ। उस समय लव असूयापूर्व्वक रामचन्द्रजीका उपहास करके कहता हैः—

सिद्धं ह्येतद्वाचिवीर्य्यं द्विजानां
बाह्वोर्वीर्य्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम् ।
शस्त्रग्राही ब्राह्मणोजामदग्न्यः
तस्मिन् दान्ते का स्तुतिस्तस्य राज्ञः ॥

उत्तर रामचरित ५

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्त्तते
सुंदस्त्रीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महांतो हि ते ।
यानि त्रीण्यकुतोभयान्यपि पदान्यासन् खरायोधने
यद्वा कौशलमिंद्रसूनुदमने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥

अब इसके आगे करुणारसके विषयमें आलोचना कीजाती है ।

उक्त दोनोंके प्रधानस्थल यथाक्रम जैसे ' मालतीमाधव ' और 'महावीरचरित' हैं, वैसेही इस रसका मुख्यस्थान ' उत्तररामचरित ' है। भवभूतिका ऐसा कुछ अभिप्राय दीख पड़ता है कि आठ रसोंमेंसे मुख्य जो पहिले तीन हैं उनमेंसे प्रत्येककी छटा एकेक नाटकमें प्रदर्शित की जावे। उनमेंसे पहिले दोके संग्रह ऊपर उद्धृत होही चुके हैं; उन्हें पढ़ हमारे रसिकपाठकोंको पूर्णतया ज्ञात होचुका होगा कि उस उस रसको पाठकोंके चित्तपर प्रतिबिम्बित करानेकी शक्ति हमारे कविमें कैसी विलक्षण थी। वैसेही वर्त्तमान इसकाभी परिपाक उतारनेमें वह कहांलों समर्थ हुआ है सोभी पाठकोंको भावी संग्रहद्वारा प्रत्यक्ष हो जायगा। परन्तु वैसा करनेके पूर्व्व पीछे कहीहुई एक बात पाठकोंको पुनः एकबार सूचित करना आवश्यक जानपड़ता है। वह यह कि नाटकके पद्यादि यदि अलग निकाले जायँ तौ उनका पूर्व्वापर सन्दर्भ टूट जानेके कारण बहुधा वे नीरस हो जाते हैं; अर्थात् सम्पूर्ण नाटक वा अङ्क पढ़नेसे तदन्तर्गत भाषणादिका रसानुभव जैसा पूर्ण और यथार्थ हो सकता है वैसा केवल उसीके पढ़नेसे कदापि नहीं हो सकता, तथापि जब कि यह निबन्ध एक प्रकारसे प्राक्कथन स्वरूप है—अर्थात् तत्तत् कविके ग्रन्थमें पाठकका प्रवेश हो उसका कुछभी मार्म्मिकज्ञान पाठकको होजाय यही इसका प्रधान अभिप्राय है–तौ पूर्व्वक्रमानुसार करुणारसकेभी कतिपय उदाहरण यहां लिखेजाने चाहिये। वे निःसन्देह अपूर्ण रहेंगे और तद्द्वारा पाठकोंको उक्त रसके स्वरूपका जो ज्ञान होगा सोभी वैसेही अंशतः मात्र होगा। अस्तु।

दुर्मुखके सीताविषयक जनापवाद रामके कानमें कहते ही वे बेसुधहो तुरन्त धरती पर गिरपड़े। फिर जब सचेतहुए तब मनोमन कहते हैं:—

रामः—(आश्वस्य)

हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाका-
दालर्कं विषमिव सर्व्वतः प्रसृप्तम्॥

इस मंदगतिछन्दका प्रयोग यहांकी घटनाको अत्यन्त अनुकूल बोध होता है। रामजीके चित्तपर जो सहसा आघात हुआ उसके योगसे उनका कण्ठ भर आया। क्योंकि उक्त उक्तिके श्रवणमात्रसे यह बोध होता है कि वह अत्यन्त कष्टपूर्व्वक व्यक्त की गयी है।

आगे निद्रादेवीकी गोदमें पड़ीहुई सीताजीको सम्बोधन दे रामचन्द्रजी कहते हैं:—

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्याजनोक्तयः।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे॥

अनन्तर उन्हें बनमें परित्यक्त करनेके कठोर निश्चयको स्थिरकर, उनने उस कार्य्यका भार दुर्मुखपर अर्पित किया, और मैं घातक अपने करस्पर्शसे देवीको क्यों अशुद्ध करूं ऐसा कह रामचन्द्रजीने सीताजीका शिर उठाकर अपना हाथ खींच लिया और बोले:—

अपूर्व्वकर्म्मचाण्डालमयि मुग्धे विमुञ्च माम्।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम्॥

तद्वत्।

विश्रम्भादुरसि निपत्य लब्धनिद्रा-
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य शोभाम्।

आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव निर्घृणः क्षिपामि ॥

उत्तररामचरित १

प्रजाराधनके निमित्त रामचन्द्रजीने साहसप्रमुख सीताजीका भी परित्याग तत्क्षण कर तो सच दिया पर आगे वह बात सन्तत उनके चित्तमें खटकतीही रही । उनका विरह प्रथमसेही दुःसह था तिस परभी उनके साथ उन्होंने जो जो धोखेबाजी की उसके योगसे वह अत्यन्त तीव्र हो उनके हृदयमें भिदगया । रामचन्द्रजीकी निम्नोक्त उक्ति कैसी स्वभावसुलभ एवम् हृदयभेदक है सो पाठक स्वयं विचार लें ।

रे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम् ।
रामस्य गात्रमसि दुर्वहगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ॥

उत्तररामचरित २

जिस दंडकारण्यके रम्य प्रदेशोंमें अभी कुछ वर्षोंके पूर्व रामचंद्रजीने जनकनंदिनीके साथ आनन्दपूर्वक दिवस विताये थे उन्हीं के पुनः प्रसंगवश दृष्टिपथमें आनेपर उनकी जो अवस्था हुई सो अगले पद्यमें कितनी उत्कृष्टताके साथ लक्षित की गयी है !

रामः—हंत परिहरंतमपि मामितः पंचवटीस्नेहो बलादपकर्पतीव ।

यस्यान्ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे
यत्संबंधिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयते ।

एकः संप्रति नाशितप्रियतमस्तामद्य रामः कथं
पापः पञ्चवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसंभाव्य वा ॥
——२.

यत्र द्रुमाअपि मृगा अपि बंधवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम् ।
एतानि तानि बहुनिर्झरकंदराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥
——३

उक्त कथनानुसार रामचन्द्रजी दंडकारण्यके पूर्वपरिचित भिन्न २
लोंका अवलोकनकरते फिर रहे थे कि वहांकी बनदेवी सीता की
वी वासंती उन्हें आ मिली। उसे सीता विवासनका संवाद ज्ञात हो
का था। अतः उस बनसंबंधीय इधर उधर की बातें प्रथम होजाने पर
सने आंखोंमें पानी ला रामचन्द्रजीसे पूंछा 'महाराज कुँवर लक्ष्मण
कुशल तौ हैं न ?,परंतु रामचन्द्रजीका चित्त उन पूर्व्वपरिचित स्थानों
अवलोकनमें नितांत मग्न होगया था; अतः वासंतीसे बात चीत हो
थी तौभी उसके उक्त प्रश्नको बिलकुल अनसुनासाकर वे मनो
न कहते हैं:—

करकमलवितीर्णैरंबुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरंगान् मैथिली यानपुष्यत् ।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि
द्रवइव हृदयस्य प्रस्तरोद्भेदयोग्यः ॥
उत्तररामचरित ३

वासंतीने वही प्रश्न फिर किया। उसे सुनतेही उसका आशय + जानकर रामचन्द्रजी अतीव करुणार्द्र होगये, और विलाप करनेलगे।

आगे रामजीने सीता सतीके साथ जो कठोरता की तदर्थ वासंती उनका उपालंभ करती है:—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शांतमथवा किमिहोत्तरेण॥
अयि कठोर यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः प्रियम्।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ कथं बत मन्यसे॥

उत्तररामचरित ३

पीछे कालिदासके विषयमें लिखती बार 'शकुन्तला' के चौथे अङ्कान्तर्गत करुणा और वत्सलरस चुहचुहाते हुए अतः प्राचीनकाल से रसिकप्रिय बनेहुए चार श्लोकोंका उल्लेख किया था; उन्हींकी समताके उक्त दो श्लोक हैं। इनके योगसे तीसरे अंकको 'उत्तररामचरित'

+ वास्तवमें वासंतीको अपनी प्रिय सहेली सीताके विषयमें पूछताछ करनी चाहिये थी; पर उनकी वातही शेष होगयी ऐसा समझकर उसने लक्ष्मणजी के विषयमेंही प्रश्न किया। इस बातने रामचन्द्रजीके चित्तपर ऐसी गंभीर चोट की कि उनका कण्ठ करुणासे भरआया। इसके सिवाय दूसरी बात यह कि पूर्वका अत्यन्त स्नेहभाव होनेपर भी उसने अपरिचित की नांई बहुमानप्रमुख उन्हें 'महाराज,' संबोधन किया!

नाटकको, भवभूतिके ग्रन्थोंको सुतरां संस्कृतभाषाको परम शोभा प्राप्त हुई है !

दुःख अत्यन्त असह्य होनेपर रामजीका हृदयोद्गार—

हा हा देवि स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमंतर्ज्वलामि ।
सीदन्नंधे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मंदभाग्यः करोमि ॥

उत्तररामचरित ३

सीताजीका वनमें वध होगया ऐसा समझकर जनकराजा शोक करते हैं:—

जनकः—हा वत्से!

नूनं त्वया परिभवं तु नवञ्च घोरं
तांचव्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य ।
क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु
संत्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽस्मि ॥

उत्तररामचरित ४

इतने संग्रह बहुधा अलम् होंगे । पर औरभी एक चमत्कृतिजनक है अतः वह यहांपर उद्धृत किया जाता है । जनकात्मजाके दुसह वि-रह का दुःख कुछ हलका हो इस अभिप्रायसे रामचंद्रजी भूतपूर्व वृत्तांतस्मारक अनेक स्थलोंका निरीक्षण कर रहे थे उसी समय वा-

संतीने पुराकालमें एक लताभवनमें जो घटना हुई थी उसका सानुनय निवेदन किया है:—

वासंती—देवदेव !

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः
सा हंसैःस्थिरकौतुका चिरमभूद्गोदावरीरोधसि ।
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविंदकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामांजलिः॥

उक्त पद्यमें हमारे कविने कितनी उत्कृष्टता और उत्तमताके साथ उक्त घटना कल्पित की है ! और समस्त जीवन यात्रामें अत्यंत मनोहर जो मुग्धावस्था सो उक्त दंपतीकी कैसे हृदयग्राही शब्दोंद्वारा वर्णित की है। *

भवभूतिने करुणरसके विषयमें पराकाष्ठा प्रदर्शित की है ऐसी प्राचीन कालसे उसकी कीर्ति चली आ रही है। हमारे पुराने पंडितों की मंडलीमें प्रसिद्ध २ संस्कृतके कवियोंके विषयमें एक न एक पद्य वा वाक्य सबके जिह्वाग्र पर पायाही जाताहै। भवभूतिके विषयमें भी निम्नोक्त पाया जाता है—

---

* ऐसेही एक नितांत हृद्य प्रसंगकी कल्पना कालिदासने 'शकुंतला' नाटकमें की है। उसका यहांपर उल्लेख किये विना हमारी लेखनी आगेको नहीं चलती। वह यह है कि जब शकुंतला दुष्यंत राजाके समीप भेजी गयी थी और वह उसका अंगीकार नहीं करता था तब शकुंतलाने राजाको स्मरण दिलानेकेलिये उसके छापकी अंगूठी अपनी अंगुलीसे निकालनेकेलिये यत्न किया। पर उसे वहां न पा उसने तत्संबंधीय भूतपूर्व, ध्यानमें धारण करने योग्य, एक घटना राजाके समीप निवेदन की वह यह है:—

कारुण्यं भवभूतिरेवतनुते †

"करुणारसका प्रतिपादन करना अकेले भवभूतिकाही काम है।" और यथार्थमें संस्कृतके सब कवियोंमें इसके संबंधसे उसकी समता करनेवाले दो तीन स्यातही निकलें, पर उससे श्रेष्ठ तो कोई भी नहीं है। एतावता पीछे जिस प्रकारसे कालिदासके कवित्व गुण-विशेषके विषयमें उदात्त रसका नामोल्लेख किया गया है वैसेही भवभूतिके विषयमें करुणारसका उल्लिखित करना युक्तिसंगत बोध होता है।

इस रसका यथार्थ निरूपण करनेकी अनोखी हथौटी अपने कवि को क्योंकर प्राप्त हुई सो जान लेनेकेलिये गंभीर विचारोंकी उलझ-नमें फंसनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। कविताका तत्व सहृदयता है, अर्थात् सर्व्व साधारण और कविमें इतनीही विशेषता है कि हृद-यकी नाना प्रकारकी वृत्तियां (जिनकी पारिभाषिक संज्ञा रस है) कवि को प्रकृतितः अत्यंत सूक्ष्मता एवं स्पष्टतापूर्व्वक भासित होती हैं। भ-वभूतिमें यह शक्ति प्रकृतिदत्त थी और उसके सहायक और भी दो

"नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामंडपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते सन्नि-हितमासीत्। तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयायं तावत्प्रथमं पिबत्वित्यनुकंपिनोपच्छन्दित उदकेन। नपुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्यासमुप-गतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितो ऽसि। सर्व्वः सगंधेषु विश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकाविति।"

अंक ५

† यह एक वाक्य है वा किसी समूचे श्लोकका अंश है सो निश्चयपूर्व्वक नहीं कहा जा सकता। हां इतना अलबत्ते कहा जा सकता है कि शार्दूलविक्रीडित वृत्त की नांई इसकी रचना है।

गुण उसमें थे। वे उसके मनकी कोमलता और शुद्धता हैं। उसके इन गुणों का सविस्तर वर्णन पीछे बहुत कुछ हो चुका है, इसके सिवाय वे उसके कैसे आधीन थे इसके उत्कृष्ट प्रमाण शृंगार और वीर रसमें स्पष्ट रूपसे पाये जाते हैं। तौ फिर करुणा रसकी बातही क्या पूंछना है? यहां पर वे परमावश्यक होनेके कारण उनके योगसे यह रस परमोत्कर्षको प्राप्त हुआ है।

पूर्वोक्त तीन रसोंके अतिरिक्त औरभी जो रस भवभूतिके नाटकों में उपलब्ध होते हैं उनके उदाहरण यहांपर उद्धृत करना अनावश्यक जान पड़ता है। क्योंकि उनमेंसे बहुतेरे तो केवल गौण अर्थात् अप्रसंगवशात् सिद्ध कियेहुए हैं; और अपर स्वरूपतया शुद्ध नहीं दीख पड़ते किंतु अन्य रसांतर्गत बोध होते हैं। यह कहां कहांपर लाये गये हैं सो प्रत्येक नाटकके वर्णनके साथ पीछे लिखा जा चुका है; हमें भरोसा है कि उस वर्णनको पढ़ हमारे जिज्ञासु पाठकगण उक्त स्थानोंको ढूंढ़ ले सकेंगे।

पीछे एक स्थानपर संस्कृत कवितामें सृष्ट पदार्थोंका वर्णन किस ढंगका पाया जाता है सो लिखकर उसमें और आधुनिक अंगरेजी कवितामें प्रधान भेद क्या पाया जाता है आदि दिखलाया गया था। तौभी भवभूतिके विषयमें यहांपर यह लिखना अनावश्यक न समझा जायगा कि वहांपर संस्कृतके प्रायः सब कवियोंपर जो आक्षेप किया गया है वह केवल अकेले भवभूतिके विषयमेंही चरितार्थ नहीं होता। आधुनिक अंगरेज कवियोंकी सजावटके ढंगपर कियेहुए सृष्टिविभवके वर्णन केवल भवभूतिकेही ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। इस कथनका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि संस्कृतके और कवियोंने सृष्ट पदार्थोंका वर्णन लिखाही नहीं; हां इतना अवश्य कहा जासकता है कि उनका

ग निराला है। उनके वर्णनमें कतिपय अत्यंत प्रसिद्ध * एवं निश्चि-त बातें कभी छूटही नहीं सकतीं; जिन्हें पढ़ यह शंका उपस्थित होती है कि—उनमेंसे बहुतेरोंने—निदान आधुनिक लोगोंने निजवर्णित प्रकृति दृश्योंका स्वयं अनुभव कदापि नहीं लिया किंतु प्राचीन ग्रंथोंको पढ़ वैसा लिख दिया है। अस्तु; तौ हम समझते हैं कि भवभूति ऐसे कवियोंमें से न था, हमें यहभी विश्वास है कि इस विषयमें और सब लोग भी हमारा अनुमोदन करेंगे। वर्डस्वर्थ कविके विषयमें यह बात प्रसिद्ध है कि उसने अपनी आंखोंसे सृष्टिका जो दृश्य, पदार्थ वा चमत्कार देखा नहीं उसका वर्णनही उसने नहीं किया। यही बात बहुधा हमारे कविके विषयमें भी घटित हो सकती है; क्योंकि संस्कृतके सब कवियोंमें विशेषकर उसीने जो ठौर ठौरपर प्रकृतिके उत्तमोत्तम वर्णन लिखे हैं उन्हें कविकपोलकल्पित वा अयथार्थ कहना युक्तियुक्त नहीं बोध होता। संस्कृतके शेष कवियों और भवभूतिके वैसेही ग्रं-

---

* आनंदका विषय है कि भाषा काव्यकी उन्नति करनेके अभिप्रायसे आजकल बहुतेरे नगरोंमें कविसमाज, कविसभा, और कविमण्डलप्रभृति स्थापित किये गये हैं, जो यथावसर समस्या दे उत्तम पूरकोंको उपहारद्वारा पुरस्कृत करते रहते हैं। उक्त सभाओंद्वारा दी हुई समस्याओंकी पूर्त्तियोंमेंसे जो जो पूर्त्तियां हमारे दृष्टिपथमें आयी हैं उन सबमें सिवाय परम प्रसिद्ध एवं निश्चित उपमा और उत्प्रेक्षादिकोंके पिष्टपेषणके कोई नई एवं अनूठी उक्ति कि जिसकेद्वारा लोकोत्तर आनंद उपजता है, देखनेमें नहीं आती। तिसपर भी तुर्रा यह है कि उनके संचालकगण उन्हींमें कृतार्थता मानलेते हैं। हम समझते हैं कि उक्त कवितारसमर्मज्ञ एवं सहृदय संचालकगणोंको सोचना चाहिये कि जिस प्रकारकी पूर्त्तियां आजकल होती हैं उनकी भाषा काव्यमें ऊनता नहीं है किंतु वे आवश्यकतासे कहीं अधिक हैं। अतः उन्हें समुचित है कि वे निज प्रतिज्ञानुसार भाषा काव्यको उन्नत एवं चिरस्थित करनेके हेतु सृष्ट पदार्थ वर्णनादि अकृत्रिम काव्यरचनाकी ओर वर्त्तमान कवियोंका चित्त आकृष्ट करें और उन्हें वैसे काव्य प्रणीत करनेकी उपयुक्त सामग्री वर्त्तमान उन्नत भाषाओंसे लेकर प्रदानकरें।

गरेज़ कवियोंके प्रकृति वर्णनोंमें दूसरा एक महद्भेद यहभी स्पष्ट-रूपसे दृग्गोचर होता है कि पहिलोंका वर्णन प्राय: अलंकाररूप-अर्थात् उपमा रूपक और उत्प्रेक्षादिगर्भित-रहता है; पर दूसरोंका वैसा न रहकर बहुतही सादा रहता है-अर्थात् तत्तत् सृष्ट पदार्थोंके केवल स्वरूपका वर्णन रहता है। इससे यही प्रतिपादित हुआ कि प्रकृति देवीके भांति भांतिके मनोहर दृश्योंका अवलोकन करनेका भवभूतिको प्रकृतिजात परमोत्साह था। हमारे इस अनुमानका परिचय हमारे मननशील पाठकोंको निम्नोद्धृत उदाहरणोंद्वारा सहजहीमें मिल जायगा।

दंडकारण्यांतर्गत सृष्टिविभवका वर्णन:—

इहसमदशकुंताक्रांतवानीरवीरुत्-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजंबूनिकुंज-
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः॥

उत्तररामचरित २

एते तएव गिरयो विरुवन्मयूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमंजुवंजुललतानि च तान्यमूनि
नीरंध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि॥

——२

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो
मेघालंबितमौलिनीलशिखराः क्षौणीभृतोदक्षिणाः।

अन्योऽन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संगमाः ॥

——२

रामः-देवि ! रमणीयमेतत्पंपासरः।

एतस्मिन् मदकलमल्लिकाख्यपक्ष-
व्याधूतस्फुरदुरुदंडपुंडरीकाः।
बाष्पांभःपरिपतनोद्गमांतराले
संदृष्टाः कुवलयिनो भुवो विभागाः ॥

उत्तररामचरित १

'मालती माधव' का नवम अङ्क प्रकृतिके भिन्न २ दृश्योंके वर्णनसे भरा हुआ है। हमारे पाठकोंमेंसे जिन्हें काव्यपरिचयके योगसे तादृश काव्यरसिकता प्राप्त हो गयी हो उन्हें उचित है कि वे उसे मननपूर्व्वक पूर्णरूपसे पढ़ें। संप्रति सर्व्व साधारणके अवलोकनार्थ कतिपय पद्य नीचे प्रकाशित किये जाते हैं।

सौदामिनी—भोस्तथाहमुत्पतिता यथा सकलएषगिरिनगर
ग्रामसरिदरण्यव्यतिकरश्चक्षुषा परिक्षिप्यते।

(पश्चाद्विलोक्य) साधु साधु।

पद्मावतीविमलवारिविशालसिंधु-
पारासरित्परिकरच्छलतोबिभर्ति।
उत्तुंगसौधसुरमंदिरगोपुराट्ट-

संघट्टपाटितविमुक्तमिवांतरीक्षम् ॥

अपि च।

सैषा विभाति लवणा ललितोर्मिपंक्ति-
रभ्रागमेजनपदप्रमदाय यस्याः।
गोगर्भिणीप्रियनवोलपमालभारि-
सेव्योपकंठविपिनावलयो विभांति ॥

(अन्यतोऽवलोक्य)

अयमसौ भगवत्याः सिंधोर्दारितरसातलप्रायस्तटप्रपातः।

यत्रत्य एष तुमुलो ध्वनिरंबुगर्भ-
गंभीरनूतनघनस्तनितप्रचंडः।
पर्य्यंतभूधरनिकुंजविजृंभमाण-
हेरंबकंठरसितप्रतिमानमेति ॥

एताश्चंदनाश्वकर्णसरलपाटलप्रायतरुगहनाः परिणतमालूरसुरभयोऽरण्यगिरिभूमयः स्मारयंति खलु तरुणकदंबजंबूवनावनद्धांधकारगुरुनिकुंजगभीरगह्वरोद्गारगोदावरीरवमुखरितविशालमेखलाभुवो दक्षिणारण्यभूधरान्। अयं च मधुमतीसिंधुसंभेदपावनो भगवान् भवानीपतिरपौरुषेयप्रतिष्ठः सुवर्णबिंदुरित्याख्यायते—

मकरंदः—सखे प्रसीद। पश्य।

वानीरप्रसवैर्निकुंजसरितामासक्तवासं पयः

पर्यंतेषु च यूथिकासुमनसामुज्जृंभितं जालकैः ।
उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरेरालंब्य सानूनितः
प्राग्भारेषु शिखंडिताडवविधौ मेघैर्वितानाय्यते ॥

श्रीरामसीताप्रभृति पुष्पकारूढ़ हो जब अयोध्याको लौटे हैं
तब मलयाचलकी ओर तर्जनी दिखलाकर रामचंद्रजी लक्ष्मणजी
से कहते हैं:—

रामः [अंगुल्या निर्दिशन्] वत्स ।

एता भुवः परिचिनोषि मिलत्तमाल-
च्छायांधकारिततुषारनिकुञ्जपुञ्जाः ।
उन्मूर्च्छदच्छमलयाचलतुंगशृंग-
प्राग्भारनिष्पतितनिर्झरपूरभाजः ॥

महावीरचरित ७

लक्ष्मणजीको भी वहांकी एक भूतपूर्व घटनाका स्मरण हो
आया अतः वे उसका वर्णन करते हैं। यह घटना पावसकी एक रात्रि
को उनकी जो अवस्था हुई सो है।

गर्जाजर्जरितासु दिक्षु बधिरे तत्स्फूर्जथुस्फूर्जितै
र्व्योम्नि भ्राम्यति दुष्प्रभंजनजवादभ्रेऽप्यदभ्रेमुहुः ।
आक्षिप्यांधयति द्रुमांधतमसे चक्षुः प्रविश्य क्षपा
यत्रासीत् क्षपिता क्षरज्जलधरे त्वक्सारलक्षीकृते ॥

महावीरचरित ७

उक्त समस्त संग्रह बाह्यसृष्टिवर्णनप्रधान हैं । अब अंतः सृष्टिके

अर्थात् अंतष्करणकी भिन्न भिन्न वृत्तियोंका वर्णन भवभूतिने जहां जहां किया है उनके थोड़ेसे उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं–

श्रीरामजी सीताजीके हाथको स्वयं निज गलेमें डाल तज्जन्य सुखानुभव करतेहुए कहते हैं.–

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेंद्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च ॥

उत्तर रामचरित १

श्रीरामचंद्रजीके मूर्च्छित होजानेपर सीताजी अदृश्य रूपसे उनके ललाटको छूती हैं, और उनके करस्पर्शके योगसे सचेत हो पुनः वे कहते हैं:–

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एष
संजीवनश्च मनसः परिमोहणश्च।
संतापजां सपदि यः प्रतिहत्यमूर्च्छा
मानंददेन जडतां पुनरातनोति ॥

उत्तर रामचरित ३

श्रीरामजीको देखतेही लवकी शत्रुता और औद्धत्तता बुद्धिसहसा लुप्त हो गयी और तत्क्षण उसके मनकी जो अवस्था हुई उसका वह बर्णन करता हैं:–

लवः—आश्चर्य्यम्।

विरोधो विश्रांतः प्रसरति रसो निर्वृतिघन-
स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति विनयः प्रव्हयति माम्।

झटित्यस्मिन् दृष्टे किमपि परवानस्मि यदि वा
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ॥

उत्तर रामचरित ६

भवभूतिने इनके अतिरिक्त और भी प्रसंगोंके वर्णन लिखे हैं। वे वर्णन भिन्न २ रसोंके हैं, विषय क्रमानुरोधसे पाठकोंके अवलोकनार्थ हम उनके भी थोड़ेसे उदाहरण नीचे लिख देते हैं:-

(मालतीका वर्णन)

(शृंगारप्रधान)

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा
सौंदर्यसारसमुदायनिकेतनं वा।
तस्याः सखे नियतमिंदुसुधामृणाल-
ज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च वेधाः ॥

मालतीमाधव १

(मालतीने लवंगिकाके धोखे माधवका आलिंगन किया उसका वर्णन)

एकीकृतस्त्वचि निषिक्त इवावपीड्य
निर्भुग्नपीनकुचकुड्मलयाऽनया मे।
कर्पूरहारहरिचंदनचंद्रकांत-
निष्यंदशैवलमृणालहिमादिवर्गः ॥

————————६

(मालती मूर्च्छित होकर पुनः सचेत होती है।)

भवति विततश्वासा नासा प्रसन्नपयोधरं

हृदयमपिच स्निग्धं चक्षुर्निजप्रकृतौस्थितम् ।
तदनु वदनं मूर्च्छाच्छेदात्प्रसादि विराजते
परिगतमिव प्रारंभेऽन्हः श्रिया सरसीरुहम् ॥ *

१०

(लवकुशको देख श्रीरामचंद्रजीने सीताजीको पहचाना है सो प्रसंग)

अपि जनकसुतायास्तच्च तच्चानुरूपं
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति ।
ननु पुनरिव तन्मे गोचरीभूतमक्ष्णो-
रभिनवशतपत्रश्रीमदास्यंप्रि यायाः ॥

उत्तर रामचरित ६

---

* ठीक ऐसीही बात विक्रमोर्वशी में भी वर्णित है:—

आविर्भूते शशिनि तमसा रिच्यमानेव रात्रिः
नैशस्यार्चिर्हुतभुजइव छिन्नभूयिष्ठधूमा ।
मोहेनांतर्वरतनुरियं दृश्यते मुच्यमाना
गंगा रोधःपतनकलुषागच्छतीव प्रसादम् ॥

अंक १

जान पड़ता है इसी श्लोकको सामने रख उक्त श्लोक लिखा गया है । तो यह भवभूति के पूर्वोक्त दो गुणोंकी विशेषता उत्कृष्टतया प्रमाणित करता है । एक तो उसकी स्वतंत्र काव्य रचनाकी दृढ़ प्रतिज्ञा, और दूसरा अभी ऊपर जो कहा गया है कि उसके वर्णन उपमाद्यलंकारस्वरूप नहीं रहते हैं किन्तु वे यथार्थ रहते हैं ।

(श्रीसीताजी जब वनवासमें थीं तबके उनके अलंकारादि रहित मुखकी मुग्ध शोभाका श्रीरामचंद्रजी स्मरण करते हैं।)

श्रमांबुशिशिरीभवत्प्रसृतमंदमंदाकिनी-
मरुत्तरलितालकाकुलललाटचंद्रद्युति ।
अकुंकुमकलंकितोज्वलकपोलमुत्प्रेक्ष्यते
निराभरणसुंदरश्रवणपाशसौम्यं मुखम् ॥

—————६

(वीररसप्रधान)

(कुशका वर्णन)

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रियसत्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् ।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमैत्युत दर्पएव ॥

उत्तर रामचरित ६

(चंद्रकेतुके युद्धार्थ ललकारने पर लवका वर्त्ताव)

व्यपवर्त्तत एष बालवीरः
पृतनानिमर्थनात् त्वयोपहूतः ।
स्तनयित्नुरवादिभावलीना-
मवमर्दादि व दृप्तसिंहशावः ॥

—————५

(वात्सल्यप्रधान)

(सीताजीकी बाल्यावस्थाका वर्णन)

अनियतरुदितस्मितं विराजत्

कतिपयकोमलदंतकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि
स्खलदसमंजसमंजुजल्पितं ते ॥ ×

उत्तर रामचरित ३

[हास्यप्रधान]

(अश्वका वर्णन)

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव ।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिंडकानाम्रमात्रान्
किंवा व्याख्यातैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ॥

३————४

अब केवल एकही रसके उदाहरण लिखनेको रह गये हैं। पीछे

× संस्कृतकाव्यरसिकोंको यह श्लोक पढ़ 'शकुंतला' तर्गत एतत्समानार्थक श्लोकका स्मरण हुए विना न रहेगा वह श्लोक यह है:—

आलक्ष्यदंतमुकुलाननिमित्तहासै—
रव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन् ।
अंकाश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहंतो
धन्यास्तदंगरजसा मलिनीभवंति ॥

अंक ७

इस श्लोककी विशेष प्रसिद्धिका कारण पीछे उल्लिखित होही चुका है कि शेझी नामक फरासीस विद्वान्को इस श्लोकने नितांत तल्लीन करडाला था ॥

कालिदासके विषयमें लिखतीबार उदात्त रसके बहुत कुछ उदाहरण लिखे गये हैं क्योंकि वे उसके ग्रंथोंमें ठौर ठौरपर पाये जाते हैं। पर भवभूतिके नाटकोंकी बात उससे भिन्न है। 'मालती माधव' के नवम और 'महावीरचरित' के पांचवें और सातवें अंकके अतिरिक्त उक्त रसके उदाहरण अन्यत्र स्यात ही पाये जाते हैं। और इसका कारण भी स्पष्ट ही है। काव्य रचयिताको जिसप्रकार स्वेच्छानुसार अपने ग्रंथमें विषय सन्निविष्ट करनेकेलिये अवकाश मिलजाता है उस प्रकारसे नाटक प्रणेताको नहीं मिलता, आख्यायिकामें हेरफेर कर नूतन रचना करनेका अधिकार उसे यद्यपि प्राप्त है तथापि पात्र प्रसंग और स्थलादि औचित्यकी ओर उसे अवश्यमेव ध्यान देना पड़ता है-अर्थात् पात्रविशेष, प्रसंगविशेष और स्थलविशेषको जहां जितनी बात शोभाप्रद हो वहां उतनी ही प्रयुक्त करना पड़ती है। इसके सिवाय नाटक तो संसारकी घटनाओं का चित्र है। एतावता सर्व्व साधारणमें बोलचाल और रहनसहन का ढंग जैसा प्रचलित होता है वैसाही लिखना पड़ता है। यही सब बाधाएँ हैं कि जिनके योगसे नाटककर्त्ता अपने समस्त गुण एकही नाटकमें प्रदर्शित नहीं कर सकता। सारांश, कवियोंके विशेषत: नाटक प्रणेतृगणोंके एक दो ग्रंथों को देख भालकर उनके गुणों की सीमा निश्चित करना अत्यंत अनुपयुक्त है। अस्तु; अब ऊपर कहे हुए रसोंके कतिपय उदाहरण रसिक पाठकोंकी सेवामें भेंट किये जाते हैं, उन्हें पढ़ उनको विश्वास होजायगा कि यह रस यद्यपि बहुत थोड़े स्थानों पर लाया गया है तथापि इसे लिखनेकी अपने कविकी हथौटी बड़ी विलक्षण थी।

संपातिः—नूनमद्य वत्सजटायुरभिवादनाय मलयकंदरकुलाय
मुपासीदति।

तथाहि—

पर्य्यायात्क्षणदृष्टनष्टककुभः संवर्त्तविस्तारयो-
र्नीहारीकृतमेघमोचितधुनव्यक्तस्फुरद्विद्युतः ।
आरात् कीर्णकणात्कणक्कितगुरुग्रावोच्चयश्रेणयः
श्यैनेयस्य बृहत्पतत्रधुतयः प्रख्यापयंत्यागमम् ॥

महावीरचरित ५

जटायुः—तदयमार्यो मन्वन्तरपुराणगृध्रराजः संपातिः ।
अहो भ्रातृस्नेहः !

पुराकल्पे दूरोत्पतनखुरलीकेलिजनिता-
दतिप्रत्यासंगात् परितपति गात्राणि तपने ।
अनष्टभ्यासौ मामुपरि ततपक्षः शिशुरिति
स्वपक्षाभ्यां श्लोपादविकलमरक्षत् करुणया ॥

——५

जटायुः—(उत्पत्य । गगनगमनमाभिनीय)

एषोऽहं प्रलयमरुत्प्रचंडरंहः
संक्षिप्तप्रथिम पिबन्निवांतरीक्षम् ।
क्षेपीयो मलयगिरेर्निवासभूभृत्-
संसक्तक्षितिरुहजालमभ्युपेतः ॥

(लंका दहनके समयका श्लोक)

॥ नेपथ्ये ॥

भ्रांतीः सप्ताधिकानां प्रविदधरुणैरर्चिषां चक्रवालै-
र्दग्वीराणामलक्ष्यप्रसृतिरतिसमुत्तप्तरौक्म्यालयेषु ।

अर्द्धप्लुष्टापसर्पद्द्रजनिचरभटोद्गाढकल्पांतशंकं
लंकां प्रौढो हुताशःसह परिदलितोऽब्धेस्त्रिकूटेन लीढे ॥

महावीरचरित ६

चंद्रकेतुद्वारा युद्धार्थ निमंत्रित हो लव उसकी ओर जानेको निकला; पर अपनेको पुनःसैन्यद्वारा आवेष्ठित देख सक्रोध कहता है

लवः—धिग्जालमान्।

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्
प्रचंडक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु मे।
समंतादुत्सर्पन् घनतुमुलसेनाकलकलः
पयोराशेरोघः प्रलयपवनास्फालित इव ॥

उत्तर रामचरित ५

भवभूतिके तीनों नाटकोंमेंसे इतने श्लोकोंका यहांपर लिखा जाना वस्तुतः अधिक बोध होता है। पर यह अभीष्ट न होनेके कारण एतदर्थ हमारा पाठकोंसे क्षमाप्रार्थी होना हमें आवश्यक नहीं बोध होता। हमारे देवोपम पूर्व्व पुरुषोंकी विशाल बुद्धिका ज्ञापक प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप जो विद्याका महान् भंडार हमारे पास है—कि जो इस देशमात्र की अति प्राचीन एवं अक्षय संपत्ति है; जिसे इसके पूर्व्व अपर देश निवासी राजागण अपहृत नहीं करसके; और जो जगत् प्रलयपर्य्यंत हमारे नामकी प्राणपणसे रक्षा करनेके लिये बद्ध परिकर है; वर्त्तमान निकृष्ट अवस्थाके कारण हमलोग समस्त जगकी दृष्टिमें कैसेही दीन हीन दीख पड़तेहों पर तौभी जिसकी ओर देख अभीलों लोग हमें समादृत करते हैं; और इतः पर सुदैव वशात् यदि हमलोगोंका उत्कर्ष

पुनः हुआही तौ जिसके बीज स्वरूपहुए विना वह होही न सकेगा–उसके विषयमें केवल अंधपरंपराद्वारा सामान्यतः शुष्क अर्थवाद करनेकी अपेक्षा उसका यथार्थरूप और उसकी योग्यता सर्वसाधारणको प्रत्यक्ष करादेनेके लिये जो यत्न करता हो उसका पाठकोंके पठन परिश्रमार्थ पद पदपर क्षमाप्रार्थी होना हम अत्यंत अनुचित समझते हैं। जिस प्रकार किसी अबोध मनुष्यको उसके पिताका धरतीमें गड़ाहुआ अतुल धन पुनः दृग्गोचर करादेनेवाले पुरुषको उसे परिश्रम देनेके हेतु संकोच माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है; उसी प्रकारसे अपने प्राचीन कविवरोंके वाग्रत्नोंकी सुंदरताको अपने सर्व्व साधारण पाठकोंके बुद्धिक्षेत्रमें लादेनेकेलिये जो यत्न करता है उसे भी-वारंवार अपने पाठकोंसे क्षमा मांगनेकी वैसी कुछ आवश्यकता नहीं है। अस्तु; हमारा अभिप्राय इतनाही है कि जिस प्रीति एवं उत्साहके साथ हमने यह गुरुतर काम हाथमें लिया है, उसी भावको हमारे पाठकगणोंको अपने चित्तमें धारण कर हमारी सहायता करनी चाहिये; हमें भरोसा है कि हमारे रसिक पाठकगण हमारी प्रार्थना का सानंद स्वीकार करेंगे।

संस्कृतके कवियोंमें परम विख्यात जो कालिदास और भवभूति उनके विषयमें हमें जो जो उचित जान पड़ा सो हमने अपने विवेकी पाठकोंकी सेवामें सानुनय भेंट किया। अब यहांपर लेखके आदिमें जो प्रस्ताव किया है उसके विषयमें कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है; कालिदास और भवभूति की समानता करनेवाला तीसरा कोई कवि नहीं है अतः संस्कृतके परमोत्कृष्ट कविवृंदमें यह दोही परिणत किये जाते हैं। इन दोनोंकी जैसी ही उत्कृष्ट प्रतिभा प्रकृतिजात थी वैसेही भाषाभी इनके आधीन अर्थात् अभिप्रायानुसारिणी थी। दोनों

ी कल्पना और पदरचनामें † नितांत सरलता, प्रौढ़ता और रसिक-
ादि जो महाकबियोंके गुण हैं सो पूर्णरूपसे दृष्टिगत होते हैं। दोनों
ा जीवनकाल एक ही था वा कुछ २ निकटवर्त्ती था आदिके विषय
ठीक ठीक नहीं कहा जा सक्ता। तौभी अत्यन्त प्राचीन कालसे
ागोंकी दंतकथाओंके कारण दोनोंके कालकी ऐसी कुछ गुत्थम
्था होगयी है कि इतःपर उसका सुरझ जाना असंभवसा बोध
ता है, अनुसंधानप्रिय पंडितगण उसे नष्ट करने के लिये प्रबल प्र-
ाणोंको भलेही उपस्थित करें, पर ये उभय कविमणि भोज राजा
ी सभाके कवियोंमें शिरोरत्न थे, उस गुणिजनैकपक्षपाती राजाने
नका कंठमणिकी नाईं संतत बड़े लाड़चावसे भरण पोषण किया
, घटना कैसीही क्षुद्र क्यों न हो—विषय तुच्छ भलेही हो, पर तौभी
पनी अस्खलित सरस्वतीके रससे वे लोग उसे भूषित करते, दोनों
ी प्रवचनपटुता तथा उक्ति प्रत्युक्तिमें सदैव झटापटी हुआही करती,
ौर परस्परकी रसपूरित कृत्तियोंको देख क्षणभरकेलिये स्पर्धाको
ूल हृदयोल्लास भरित हो उनका अभिनंदन करना, आदि असत्यमय
ावनाओंमेंही रंगजाना मनको प्यारा लगता है; और जिन वृथा
त्याभिमानी निठुर अनुसंधानशील लोगोंने उक्त मनोहर भ्रमोंको
ष्ट करनेके हेतु अपनी बुद्धिको कष्ट दिया है उन्हें शतशः शाप देनेके
लिये उद्यत हो उनके सर्वथा निर्द्धारित सत्यकी उपेक्षा करनेको वे त-
निक भी नहीं हिचकते !

† हां यह बात अवश्य देखी जाती है कि पूर्व्वोल्लेखानुसार भवभूतिके ग्रंथोंमें लंबे २
समासघटक पदपाये जाते हैं; परसाथही वे सुबोध हैं और बहुत थोड़े स्थानों पर
प्रसंगानुरोधके कारण व्यवहृत किये गये हैं। अतः उक्त उल्लेखके विरोधी नहीं हो सक्ते॥

———

देखिये "निबंधमालादर्श के" विषय में

कलकत्तेका भुवन विख्यात भारत मित्र अपनी १८ जून १९०० की संख्या में क्या लिखता है:—

"नागपुर निवासी श्री युत पंडित गंगा प्रसाद जी अग्निहोत्री ने चिपलूनकरजी की निबन्धमाला में से पांच निबंधों का हिन्दी अनुबाद कियाहै इन में से पहला लेख विद्वत्व और काव्यत्व है, दूसरा समालोचना, तीसरा अभिमान चौथा सम्पत्तिका उपभोग और पांचवां वक्तृता। पांचों लेख १६२ पृष्ट में समाप्त हैं। हिंदी भाषा में अपने ढंगकी यह एक नई और आदर योग्य पुस्तक है। अबतक हिन्दी में चिपलूनकर की भांति बिचारशील निबंध लेखक नहीं हुये हैं। इसी से इसप्रकार की कोई पुस्तक भी हिन्दी में नहीं थी। अग्निहोत्री जी की कृपाही से यह पहली पुस्तक हुई। इस पुस्तक के पढ़ने से हमारे देश के पढ़े लिखे लोगों के बिचारों में भी बहुत कुछ तेजी आसकती है। पढ़े लिखे लोगों के लिये इसमें बहुत कुछ उपदेश की बातें मिलती हैं। बुद्धि की तीव्रता और बिचार का निर्भ्रमपन इन निबंधों से पूरा २ झलकता है। अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है।

पुस्तक लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से ।।=) मिलती है।